महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ अंक : १४
दयानन्दाब्द: १९५
विक्रम संवत्: आषाढ़ शुक्ल २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

जुलाई द्वितीय २०१९

अनुक्रम

०१. योगदर्शन में भुवन-ज्ञान और...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-३३	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. वेदमूलक कथाएँ	रामनाथ वेदालङ्कार	१५
०५. भगवान् जी! मैं तुमसे झगड़ना...	कन्हैयालाल आर्य	१९
०६. शङ्का समाधान- ५२	डॉ. वेदपाल	२३
०७. क्या चाहिए? सुख या सुविधाएँ??	रामनिवास गुणग्राहक	२५
०८. मास्टर आत्माराम अमृतसरी	सोमेश 'पाठक'	२७
०९. योग-साधना एवं स्वाध्याय शिविर		२९
१०. संस्था की ओर से...		३१
११. १३६ वाँ ऋषि बलिदान समारोह		३३
१२. वेदगोष्ठी-२०१९		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

योगदर्शन में भुवन-ज्ञान और उसकी पहचान-१

योगदर्शन के विभूति पाद में विभूतियों का वर्णन करते हुए सूत्रों में महर्षि पतञ्जलि ने और भाष्य में महर्षि व्यास ने कहा है कि योगांगों के अभ्यास में दक्षता अर्जित करने के उपरान्त योगी की बुद्धि में इतनी प्रखरता आ जाती है कि यदि वह चाहे तो भौतिक विद्याओं के ज्ञान का अन्तर्द्रष्टा भी बन सकता है। अनेक भौतिक विभूतियों के उल्लेख की शृंखला में वे कहते हैं कि योगी ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी ज्योतिषीय ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। उसका उपाय यह है-

''**भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्**''। २६।

''**चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्**''। २७।''**ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्**''।२८।

''**त्रयमेकत्र संयमः**''।४। ''**तत्-जयात् प्रज्ञालोकः**''।५।

योगदर्शनकार को अभीष्ट इन सूत्रों का प्रासंगिक अर्थ है-'प्रत्येक सौरमण्डल के प्रकाशमय सूर्य को केन्द्र मानकर उसमें संयम करने से अर्थात् तत्सम्बन्धी ज्ञान में संयम करने से उसके भुवन-विषयक ज्ञान का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा को केन्द्र मानकर तद्विषयक ज्ञान में संयम करने से ग्रह-नक्षत्रों की संरचना और स्थिति का ज्ञान होता है। ध्रुव नामक नक्षत्र को केन्द्र मानकर तद्विषयक ज्ञान में संयम करने से ग्रह-नक्षत्रों की गति का ज्ञान होता है'। २६-२८।

योगदर्शन का '**संयम**' पद सामान्य अर्थ का वाचक नहीं है, अपितु पारिभाषिक है। यह धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों योगांगों के सामुदायिक अर्थ का बोधक है। इसका अर्थ है-ज्ञेय विषय का निश्चय, ज्ञेय विषय में एकाग्रता और उसमें सर्वात्मना तल्लीनता होना। इस प्रकार के '**संयम**' की सिद्धि होने पर योगी अर्थात् ज्ञाता की बुद्धि में इतनी निर्मलता और प्रखरता आ जाती है कि उसमें लक्षित ज्ञान का आलोक=प्रत्यक्ष करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। ४-५।

योगदर्शन के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सैंकड़ों भाष्य हो चुके हैं, किन्तु उनमें विभूति-पाद के रहस्यों की बुद्धिगम्य सटीक स्पष्टता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। उसका एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि अधिकांश संस्कृत भाषा के ज्ञाता आधुनिक वैज्ञानिक विषयों से अपरिचित होते हैं और आधुनिक वैज्ञानिक विषयों के ज्ञाता संस्कृत साहित्य की गंभीरता से अनभिज्ञ होते हैं। उपर्युक्त विषय में भी यही स्थिति ज्ञात होती है। ऊपर उद्धृत सूत्रों में स्पष्ट शब्दों में ज्योतिष एवं भूगोल के विषय का उल्लेख है, एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो इनसे भिन्न अर्थ का संकेत करता हो, किन्तु फिर भी कुछ भाष्यकारों ने इन सूत्रों का अर्थ बलात् शरीर की नाड़ियों और चक्रों-परक किया है, जो नितान्त अशुद्ध है। कुछ ने उक्त प्रथम सूत्र के सम्पूर्ण भाष्य को बिना किसी आधार के प्रक्षिप्त घोषित कर दिया है। अधिकांश ने केवल शब्दार्थ करके भाष्य की पूर्णता मान ली है। यही कारण है कि आधुनिक बुद्धिजीवी जन ऐसे भाष्यों पर विश्वास नहीं कर पाते हैं। ऐसे में हम 'अन्ध-पंगु-न्याय' से संस्कृत-सम्बन्धी शोधकार्य को उपयोगी एवं विश्वसनीय बना सकते हैं। संस्कृत के लेखक, वैज्ञानिक लेखकों और उनके साहित्य से उचित सहयोग लें तथा वैज्ञानिक लेखक संस्कृत के लेखकों का सहयोग ग्रहण करें। विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान से अनेक रहस्यों का समाधान मिल सकता है और शोधकार्य अधिक प्रामाणिक हो सकता है। असत्याग्रही शोध-दिशा को भी सही दिशा दी जा सकती है।

प्रस्तुत प्रकरण में भाष्यकारों की समस्या व्यासभाष्य में प्रयुक्त शैली है, जो कल्पनारम्य और अतिरंजनापूर्ण होने से अविश्वसनीय बन गयी है। उसको पुराण-शैली भी कह सकते हैं। किन्तु केवल शैली के आधार पर भौगोलिक और ज्योतिषीय तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता। वर्णन के आधारभूत लोकों, पातालों, द्वीपों, देशों और पर्वतों के नाम ऐतिहासिक हैं, प्रामाणिक हैं, सत्य हैं। जरूरत है भाष्यकारों द्वारा उनके श्रमपूर्ण शोध की और उनकी पहचान बताने की। पुराण-शैली उस खारे समुद्र के समान है जिसमें डुबकी लगाकर तथ्य रूपी मोती चुनने पड़ते हैं। पुराणों, रामायण-महाभारत के कथानकों और कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों

की भी ऐसी ही शैली है। वही परम्परागत शैली उक्त सूत्रों के व्यास भाष्य में है। इस शैली को हम आधुनिक संस्कृत-हिन्दी के उपन्यासों, नाटकों और काव्यों की शैली से समझ सकते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास, नाटक या काव्य में पात्र और स्थान प्रायः यथावत् होते हैं किन्तु उनको रोचक बनाने के लिए घटनाएँ-चमत्कार, कल्पना और अतिरंजनामय शैली में होती हैं। समीक्षक उस कल्पनात्मक शैली में से तथ्यों का चयन करके रचना का मूल्यांकन करता है। उसी प्रकार व्यासभाष्य के अन्तर्गत शैलीय चामत्कारिक वर्णन रूपी छिलके को छोड़ कर अन्न रूपी तथ्यों को सत्य एंव व्याख्येय स्वीकार करना चाहिए। व्यासभाष्य की वर्णन-शैली अतिरंजनापूर्ण, कल्पनारम्य पुराण-शैली है जो परम्परागत रूप से प्रचलित है। किन्तु वह मूल प्रकरण प्रक्षिप्त नहीं है। इसकी पुष्टि प्राचीन भूगोल एवं इतिहास तथा आधुनिक भू-वैज्ञानिकों के शोधों से हो जाती है। यह लाखों वर्ष पुरातन परम्परागत भूगोल है। प्रकृति में समय-समय पर होने वाली उथल-पुथल से पृथिवी में विस्मयकारी परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ भूमिभाग समुद्र बन गये हैं और कुछ समुद्र-स्थल के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। नदियाँ अपना प्रवाह बदल चुकी हैं और पर्वत अपना स्वरूप बदल चुके हैं, फिर भी पर्याप्त भूगोल अवशिष्ट है और अधिकांश की पहचान भूगोलवेत्ताओं ने करने का प्रयास किया है। संस्कृत-साहित्य और आधुनिक अनुसन्धानों के निष्कर्षों के अनुसार उनकी पहचान अग्रिम प्रकार से है।

योगदर्शनकार ने जिसको 'भुवन' अर्थात् ब्रह्माण्ड कहा है, व्यासभाष्य में उसके प्रसार का वर्णन करते हुए उसका विवरण भी दिया है। पहले सम्पूर्ण भुवन को सात लोकों में विभाजित हुआ प्रदर्शित किया है, फिर सात लोकों में से सर्वप्रथम भूलोक और स्वर्लोक का अन्तर्विभाजन प्रदर्शित किया है। तदनुसार भूलोक में सात पाताल लोक हैं, सात द्वीप हैं, उन द्वीपों में अनेक वर्ष=देश हैं। भू के अन्तस्तल में सात नरक=भूगर्भस्थ प्रदेश=सतहें हैं, किन्तु उनका स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं है। यह विवरण पुराणों, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थों में भी न्यूनाधिक रूप में उपलब्ध होता है। स्वर्लोक (=द्युलोक) में ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों का विवरण प्रदर्शित है। इस प्रकार 'भुवन' का प्रसार सात ऊर्ध्व लोक और सात पाताल लोक, कुल चौदह लोकों के रूप में-

सात ऊर्ध्व लोक- भौगोलिक सन्दर्भ में सामुदायिक रूप में तीन लोकों-भू, भुव, स्व लोक, अथवा पृथिवी, आकाश, द्युलोक, अथवा पृथिवी, आकाश, पातल का उल्लेख वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में सैकड़ों बार हुआ है। फुटकर रूप में तो इनका उल्लेख असंख्य है। इनके अतिरिक्त फुटकर रूप में मह, प्राजापत्य और ब्रह्मलोक का भी उल्लेख है। सात लोकों के नामों का एक साथ उल्लेख **तैत्तिरीय आरण्यक १०.२७ में मिलता है**। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में 'सत्यलोक' का नामोल्लेख है (३.३.६.११) जो अन्य छह लोकों के अस्तित्व का संकेत देता है। 'सूर्य सिद्धान्त' में 'आदि' पद के प्रयोग से ब्रह्माण्ड के सात लोकों की ओर संकेत है (१२.२९)। इसी प्रकार अन्य वैदिक साहित्य में भी सात लोकों की चर्चा मिलेगी। लौकिक भौगोलिक संस्कृत साहित्य में तो सात लोकों का विवरण सहित उल्लेख है। यह समझना चाहिए कि जिस प्रकार ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति-गति आदि को जानने के लिए बारह राशियों का विभाजन कृत्रिम है, उसी प्रकार भुवन प्रस्तार को जानने के लिए सात लोकों का विभाजन भी कृत्रिम और आनुमानिक है। इस विभाजन में मतान्तर भी हैं। उनकी पहचान निम्न प्रकार है-

१. भूर्लोक- अन्य नाम पृथिवी लोक। पृथिवी के निम्नतम भू-भाग से लेकर सुमेरु पर्वत के शिखर तक प्रदेश भू-लोक के अन्तर्गत हैं। पुराणों का कथन है कि सूर्य और चन्द्र का प्रकाश जहाँ तक प्रकाशित करता है, वह समस्त क्षेत्र 'पृथिवी लोक' है।

२. भुवर्लोक- अन्य नाम अन्तरिक्ष या आकाश लोक। सुमेरु पर्वत के शिखर से लेकर 'ध्रुव' नामक नक्षत्र तक का लोक 'भुवर्लोक' है, जिसके अन्तर्गत ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि हैं। पुराणानुसार, पृथिवी का जितना व्यास है उसके ऊपर उतने ही व्यास का रिक्त स्थान 'भुवर्लोक' है।

३. स्वर्लोक- अन्य नाम माहेन्द्र, स्वर्ग, सूर्य, आदित्य, द्युलोक। योगदर्शन के मतानुसार स्वर्लोक सौरमण्डल है और इसके पाँच प्रखण्ड हैं। दर्शन-भाष्य में उन प्रखण्डों का नामोल्लेख नहीं है। पुराणानुसार, सौरमण्डल से लेकर

'ध्रुव' नक्षत्र तक का लोक 'स्वर्लोक' है। चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, शनि, सप्तर्षि-मण्डल इसी के अन्तर्गत हैं। संस्कृत-ग्रन्थों में लोकों की दूरी करोड़ों योजन में बताई है, जो एक आनुमानिक और प्रतीकात्मक समझनी चाहिए।

४. मह-लोक- अन्य नाम प्राजापत्य लोक। सूर्यलोक से ऊपर का प्रदेश 'महलोक' के अन्तर्गत है। पुराणानुसार, ध्रुव नामक नक्षत्र से ऊपर एक करोड़ योजन तक का प्रदेश 'महलोक' है। तैत्तिरीय उपनिषद् में 'मह' को आदित्य लोक बताया है। (१.५.१)

५-७. ब्राह्मलोक- महलोक से ऊपर 'जनलोक', इसके ऊपर 'तपलोक', इसके ऊपर 'सत्यलोक' है। इनका विस्तार करोड़ों योजन में है। इन तीन लोकों के समुदाय को 'ब्राह्मलोक' कहा जाता है। इन तीनों लोकों का नामोल्लेख वैदिक साहित्य में है।

उक्त सात ऊर्ध्व लोकों के नाम-स्थान की पुष्टि में व्यास-भाष्य में किसी 'संग्रह' नामक ग्रन्थ का एक श्लोक भी उद्धृत किया है। वैदिक साहित्य में 'ज्योतिष-शास्त्र' नामक एक वेदांग है। जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक भारतीयों ने विश्व में सर्वप्रथम, संख्या, शून्य, नवग्रह, २७ नक्षत्र, सप्तर्षि मण्डल, राशि-चक्र, आकाश गंगा, ग्रहण, ध्रुव तारा, इनकी स्थिति, गति, संरचना आदि की पहचान तथा दक्षिणायन, उत्तरायण, ऋतुएँ, दिन, वर्ष, कालमान, काल-केन्द्र आदि का ज्ञान प्राप्त किया था और विश्व को दिया था। सात ऊर्ध्व लोकों में से प्रारम्भिक चार लोकों के विवरण की पुष्टि तो आज की खोजों से हो रही है। प्राचीन इतिहास में समय का उल्लेख इन्हीं ग्रहों-नक्षत्रों की आकाशीय स्थिति के अनुसार किया जाता था। ऐसी गूढ़ खोजों के लिए हमारे पूर्वज मेधावी जनों ने '**संयम**' योग विधा का आश्रय अवश्य लिया होगा। योग-विद्या के आचरण से ब्रह्मविद्या की सिद्धि करने वाले मेधावी जनों को '**योगी**' पारिभाषिक नाम से पुकारा जाता रहा है तथा भौतिक विद्याओं में सिद्धि प्राप्त करने वाले मेधावी जनों को महर्षि, ऋषि, मुनि, विशेषज्ञ, वैज्ञानिक आदि कहा जाता रहा है।

सात पाताल लोक- जिस प्रकार ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों, की गति-स्थिति आदि का ज्ञान करने के लिए '**ध्रुव**' नक्षत्र को केन्द्रीय मान बिन्दु माना जाता है, उसी प्रकार लोकों, द्वीपों, देशों और पातालों के निर्धारण का मानदण्ड '**सुमेरु**' पर्वत को माना गया है। सामान्य शैली में इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि आर्यों का आदि निवास सुमेरु पर्वत और उसके आस-पास के हिमालयस्थ उच्च स्थानों पर था जिसको 'देवलोक' आदि अनेक नाम प्राप्त थे। विभिन्न कारणों से जब वहाँ से आर्य समुदायों का स्थानान्तरण हुआ तो वे हिमालय की पार्श्वस्थ घाटियों, जलीय प्रदेशों, समुद्र-तटों अथवा द्वीपों में आकर बसे तो उन निम्न भूमि-भागों को 'पाताल' क्षेत्र नाम दिया गया। यही स्पष्टीकरण 'सूर्यसिद्धान्त' में है (१२.३५)। 'महाभारत' में दी गई निरुक्ति और शब्दकोशों में दी गई व्युत्पत्ति से भी इसी भौगोलिक स्थिति की जानकारी मिलती है। 'महाभारत' में कहा है कि जिस क्षेत्र में पर्याप्त जलधाराएँ या जलतरंगें प्रवाहित हैं, इस कारण (पात+अलम्=पातालम्) उसको 'पाताल' नाम दिया गया है। कोश कहते हैं-''**पादस्य तले वर्तते, इति पातालम्**''=हिमालय के या भूमि के पादतल में होने से 'पाताल' नाम पड़ा (उद्योग पर्व ९९.६)। भूर्लोक अर्थात् पृथिवी लोक का पातालीय वर्गीकरण आदि-वैदिक काल की घटना प्रतीत नहीं होती। यह उस परवर्तीकाल की घटना है जब कश्यप की सन्तानों-असुर, देव, दानव इन सगे भाइयों में '**देवलोक**' की राज्यसत्ता को पाने के लिए युद्ध आरम्भ हो गये थे। बड़े पुत्र होने के कारण पहले राजसिंहासन पर दिति के पुत्र 'दैत्य', अपर नाम असुरवंश के ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु बैठे। दनु के पुत्रों दानवों ने उनका समर्थन किया। समर्थ होने पर जब अदिति के पुत्रों आदित्यों अर्थात् देवों ने राज्य में अपना भाग माँगा तो असुरों ने ठीक उसी प्रकार मना कर दिया जैसे महाभारत काल में पाण्डवों को कौरवों ने मना कर दिया था। उसके परिणामस्वरूप इनमें अनेक युद्ध हुए जिन्हें वैदिक इतिहास में '**देवासुर संग्राम**' नाम प्राप्त है। अन्ततः देवों की विजय हुई और असुर आदि जन देवलोक को छोड़कर निम्न भू-भागों में दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रव्रजन कर गये। वहाँ उन्होंने अपनी नई बस्तियाँ बसाईं। उन निम्न भूभागों को 'पाताल' क्षेत्र नाम दिया गया। आगे द्वीपों और देशों के भौगोलिक परिचय में इसका अधिक स्पष्टीकरण हो सकेगा।

(क्रमशः) -**डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

मृत्यु सूक्त-३३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

आरोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः।।

हम इस वेद-ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के दसवें मंडल के १८ वें सूक्त के छठे मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इसका देवता त्वष्टा है, इसका छन्द निचृत त्रिष्टुप है और ऋषि यामायनः है। इस मन्त्र में कहता है कि हम मृत्यु से पहले तीन चीजों से डरते हैं, संसार में रोग है, वृद्धावस्था है, मृत्यु है। ये तीन चीजें ही हमें डराती हैं। भगवान् बुद्ध के जीवन में भी यही आता है। ज्योतिषी ने कहा था कि यदि इस बालक ने मृत्यु, बुढ़ापे और रोग को देखा तो फिर संसार में नहीं रहेगा। पिता ने बहुत बचाने का यत्न किया कि इसके सामने कोई मृत्यु न हो, कोई दुःख न हो, शोक न हो, लेकिन मनुष्य किसी को कितना बचा सकता है। एक दिन सामने से आते हुए बूढ़े को भी देखा, रोगी को भी देखा, एक दिन मृत्यु को भी देखा, शव को भी देखा और उसके मन में जिज्ञासा हुई कि यह क्या है? क्या यह चाहने योग्य चीज है? नहीं चाहने योग्य है तो बचा कैसे जा सकता है। यही बात ऋषि दयानन्द के जीवन में आती है। ऋषि दयानन्द के जीवन में मृत्यु की दो घटनायें आती हैं। पहली बार दयानन्द ने मृत्यु को अपने घर में अनुभव किया।

मनुष्य बड़ा हुआ है तो बहुत कुछ देखा होगा। अन्तर यह होता है कि उस देखने से हमारे ऊपर विशेष कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि हमारे और उसके अनुभव नहीं जुड़े होते। जब हमारा कोई निकट का व्यक्ति मरता है, वियुक्त होता है तब हमारी अनुभूति अलग होती है और दूर का कोई मरता है तो उसके लिए कभी हमारे मन में विचार भी नहीं आता है, इसलिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि ऋषि ने मृत्यु कभी देखी ही न हो, लेकिन जो पहली मृत्यु अनुभव में आई वह थी उनकी बहन की मृत्यु। उन्हें इतना आश्चर्य हुआ कि वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उनको यही नहीं सूझा कि इस पर क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की जाए। जब हम समझदार होते हैं तो दूसरों को देखकर वैसी प्रतिक्रिया करते हैं। हमारे समाज में किसी की भी मृत्यु पर रोना, शोक व्यक्त करना, दुःख मनाना, यह हमारे शिष्टाचार में है। किसी के घर में उत्सव, कोई प्रसंग, जन्म होने पर प्रसन्नता व्यक्त करना, हँसना, उल्लास प्रकट करना, अच्छी बातें कहना यह शिष्टाचार है। कहते हैं किसी की मृत्यु पर हँसना, यह अशिष्टता है और किसी अच्छी जगह पर रोना, दुःख व्यक्त करना, यह भी अशिष्टता है।

मनुष्य जब दुःख को देखता है तो देखने के बाद अनुभव का जो स्तर होता है वह निकटता के बिना नहीं आता। ऋषि दयानन्द के जीवन में अनुभव का जो पहला स्तर आया, वह बहन की मृत्यु से आया। उस समय क्या कहूँ, क्या करूँ, क्या बोलूँ, उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। लिखते हैं, मैं बैठा देखता रहा यह क्या है। किन्तु, जब दूसरी घटना घटी, चाचा की मृत्यु हुई, जो उनसे बहुत प्रेम करते थे। प्रेम करने वाले के वियोग में, उससे दूरी होने में, दूरी का भय ही मनुष्य को दुःखी कर देता है। दुःख में अश्रुपात और रुदन स्वाभाविक होता है। वह लिखते हैं, मैं बहुत रोया, रोते-रोते मेरी आँखें सूज गयीं। मन में ऐसा लगने लगा कि यह मृत्यु क्या है, इसको जानना चाहिए, इससे छूटने का उपाय करना चाहिए।

जो भी संसार से छूटा है, संसार से जिसने भी छूटना चाहा है, जो भी यह समझता है कि इस संसार को जानकर

के, इसके लाभ को प्राप्त करे और इसके दु:ख से बचे, तब उसके सामने तीन ही बातें आती हैं- उसकी वृद्धावस्था, उसकी रुग्णावस्था, उसकी मृतावस्था। जब भी मनुष्य इनको अनुभव करता है, इन पर विचार करता है, इन परिस्थितियों को जब वह समझता है तो इनसे बचने की बात करता है और बचने की बात करने के लिए और तो कोई उपाय है नहीं-मृत्यु से तभी बचा जा सकता है जब जन्म न हो। वृद्धावस्था से तभी बचा जा सकता है जब युवावस्था से बाद की स्थिति न आए। रोग से बहुत देर तक, बहुत लोग नहीं बच सकते हैं। कभी अभाव, दुर्घटना, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, कोई न कोई दु:ख बना ही रहता है। इन तीनों बातों पर जब विचार करता है तो मनुष्य के मन में इनसे बचने की इच्छा होती है। लेकिन वेद कह रहा है **आरोहतायुर्जरसं वृणाना** अरे तुम बढ़ो! आयु की ऊँचाई पर चढ़ो और जो बीच की स्थितियाँ आती हैं उनको सहज '**वृणाना**' वरण करते हुए चलो, स्वीकारते हुए चलो, प्रसन्नता से अपनाते हुए चलो। यह जो जरा अवस्था है उसको हम पाने वाले बनें, उससे भयभीत होने वाले ना बनें, उसका उपाय करने वाले बनें और इसमें एक रोचक तथ्य और दिया है **अनुपूर्वं यतमाना**- और यह केवल हमको प्राप्त हो, दूसरों को न हो, दूसरों को हो हमको न हो, ऐसा नहीं। **अनुपूर्वम्**- अर्थात् जो-जो जिस-जिस क्रम से पैदा हुआ है, युवा बना है, वृद्धावस्था आयी है तो **यतमाना** हम यत्न करें कि हम जिस क्रम से आए हैं, वही क्रम हमारा दुनिया में रहे। उसी क्रम से हम आगे बढ़ें, उसी क्रम से यहाँ की यात्रा पूरी करें।

आरोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ। जितने भी तुम हो यहाँ, जिन्होंने जन्म धारण किया हुआ है वे **यतमाना** बनो, प्रयत्न करने वाले बनो। इसके लिए इस मन्त्र में उपाय भी बताए गए हैं कि क्या करना चाहिए। पहला उपाय तो हमने दिनचर्या के रूप में देखा था- **नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त:** कहता है कार्य करना तो है ही, आप करने के लिए ही पैदा हुए हैं, लेकिन जब करने के बहुत सारे विकल्प होते हैं तो विकल्पों के परिणाम भी तो भिन्न-भिन्न होंगे। इसके लिए जो विवेचना है, वह है समीक्षा, भली प्रकार से देखना, सम्यक् तरह से ईक्षण करना, गहराई से समझना, गहराई से देखना। समीक्ष्यकारी, जो कुछ करता है, बहुत सोच-विचार कर करता है, समझबूझ कर करता है। **विषयेष्वसक्त:** जब हम सोच समझकर नहीं करते, तब हमारे ऊपर विषयों का बल, इच्छा प्रभावी रहती है, हावी रहती है। इसलिये हम इन्द्रियों के वशीभूत न हों, हम अपने विवेक से चलने वाले हों। **समीक्ष्यकारी** और **विषयेष्वसक्त:** ये दोनों साथ-साथ हैं। दोनों का संबन्ध है। जब हम भावुकता से करते हैं, विवशता से करते हैं, किसी व्यसन की बात से करते हैं तो हम 'समीक्ष्य' होकर नहीं करते, विषयों में आसक्त होकर करते हैं।

संस्कृत में दो शब्द हैं **आसक्त** और **असक्त**। आसक्त कहते हैं उसमें बिल्कुल लिपटा हुआ है, उससे जुड़ा हुआ है, उसके अन्दर खोया हुआ है। असक्त, जो सक्त नहीं है, आसक्त नहीं है, जिसको कोई चीज छूकर नहीं गयी है। **पद्म पत्र इव अंभसा**, इसका सबसे अच्छा उदाहरण है कमल का पत्ता। कहते हैं कि कमल का पत्ता पानी में, कीचड़ में रहता है लेकिन एक बूँद जल उस पर ठहरता नहीं है। आप कितना भी पानी डालें वो तो सूखा का सूखा रहता है। हम भी इस संसार में रहें लेकिन संसार की कोई चीज हमें बिगाड़े नहीं, हमारे रूप को विकृत न करे, कोई भी चीज हमारे ऊपर चिपक कर न रहे, जबर्दस्ती न हो।

हम दो चीजों को साथ-साथ करेंगे और ध्यान में रखकर चलेंगे तो हमें यह परेशानी नहीं आएगी। **समीक्ष्यकारी** अर्थात् जो कुछ करेंगे सोचकर करेंगे, समझकर करेंगे। इसमें एक बड़ी रोचक चीज ध्यान रखने की है। होता क्या है कि मनुष्य की जानकारी थोड़ी होती है जो वो आज करता है, कल उसे गलत लगने लगता है कि यह तो गलती हो गयी। तो फिर क्या करें? क्या आज न करें? यह तो प्रतिदिन ऐसा ही होगा। क्या पता इस जीवन के बाद के जीवन में हमको पता लगे कि यह गलत था, यह सही था। करने का नियम क्या है? इस समय जो काम करना है, वह करना तो इसी समय है और इस समय जो सबसे अच्छा हो सकता है वही करना है। ऐसा करके आपको कभी दु:ख नहीं होगा, पश्चात्ताप नहीं होगा क्योंकि आपके पास कोई विकल्प नहीं था। आपको दु:ख तब होता है, जब आपके विकल्प हों और आपके विकल्प के चुनने में

गड़बड़ हो जाए, आप गलत विकल्प चुन लें, आपकी दृष्टि गलत हो जाए, वो दु:ख का कारण होता है। हमको जो आता था, जैसा आता था यदि हमने वैसा ही किया है तो न कोई हमें अपराधी कहेगा, न हमें दु:ख होगा। भले ही हानि-लाभ होंगे।

मैं एक बार सिंगापुर गया था। वहाँ एक बहुत बड़े व्यापारी से चर्चा हो रही थी। चर्चा करते हुए, कैसे काम करें, कौन सा काम करें, कौन सा ठीक है, कौन सा गलत है, क्या सोच कर करें इस पर बात चल रही थी। उस व्यक्ति ने कहा, देखिये शास्त्री जी, आज मैं यह सोच सकता हूँ कि उस दिन यह काम न करके ऐसा किया होता तो ठीक था। ऐसे बहुत सारे विकल्प मेरे पास आज हैं, लेकिन उसका कोई मतलब नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। मुझे पश्चात्ताप क्यों नहीं है, पश्चात्ताप इसलिए नहीं है क्योंकि उस दिन मेरे पास उससे अच्छा विकल्प नहीं था अर्थात् जिस समय जो काम हम कर रहे हैं, उस समय उस काम को सबसे अच्छे रूप में कर सकें, सम्पूर्ण और सबसे अच्छी जानकारी के साथ कर सकें तो फिर कभी हमें पश्चात्ताप नहीं होगा, दु:ख नहीं होगा। यह जो परिस्थिति है इसको कहते हैं, **समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त:**। समीक्षा कर कौन सकता है? जो **विषयेषु असक्त:**, जिस पर विषय हावी नहीं है, जो विषयों को देखकर उनके प्रति भागता नहीं है, उनके आकर्षण में बँधा हुआ नहीं है। उनको पाने के लिए, भोगने के लिए, उनके साथ रहने के लिए कोई विवशता जिसकी नहीं है, ये दोनों चीजें साथ-साथ हैं। जो विषयों में आसक्त होगा वह समीक्षा नहीं करेगा, वह सोचेगा नहीं, वह कर लेगा और परिणाम के बाद उसको ध्यान आएगा कि गलत हुआ है। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है, आयुर्वेद कहता है आप यदि सुखी रहना चाहते हो तो **नित्यं हिताहारविहारसेवी** हमारा आहार-विहार हितकर हो, ठीक हो। जो कुछ हम करते हैं वह विषयों की आसक्ति का भाव है, इच्छा का भाव है, आग्रह का भाव है, वह न हो। उनके प्रति हमारे मन में कोई पक्षपात न हो, तब हम विचार सकते हैं, हानि-लाभ सोच सकते हैं, करने न करने की बात सोच सकते हैं, कब करने से क्या होगा यह सोच सकते हैं। इसके लिए कहा **समीक्ष्यकारी**।

जब हम विवाह संस्कार करते हैं तो एक 'सप्तपदी' का क्रम होता है और उस सत्पपदी के क्रम में छठे पद को **'ऋतुभ्य: षट्पदी भव'** ऐसा कहते हैं। अब 'ऋतुभ्य: षट्पदी भव' कहने से तो बहुत बात समझ में नहीं आती। लेकिन यहाँ इतना अभिप्राय है कि जो बात है उसके समय को, परिस्थिति को, अवसर को देखकर करना। मतलब विचार करके फिर करना है, यूँ ही नहीं कर देना। जो व्यक्ति भावुकता से कार्य कर लेते हैं, बिना सोचे कर लेते हैं, संवेग-आवेग में कर लेते हैं, लोभ में लालच में पड़कर कर लेते हैं तो उनके काम गलत हो जाते हैं। वह गलती न हो, इसलिए वहाँ कहा गया, **ऋतुभ्य: षट्पदी भव** हम जो कुछ जीवन में करें, उसे सोचें, उसके बारे में विचार करें, समय पर करें, अच्छी तरह से करें।

इसलिये कहता है **आरोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ**- हमारा यत्न होना चाहिए, प्रयत्न होना चाहिए कि हम किसी चीज का वरण करें, विवेक से चुनें, जबर्दस्ती नहीं।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्यसमाज के भ्रामक प्रकाशन- मैक्समूलर की अन्तिम पुस्तक My Indian Friends में आर्य धर्म, आर्य जाति तथा महर्षि दयानन्द की निन्दा में लिखे गये एक-एक वाक्य व आक्षेप का उत्तर देते हुए हमने ऋषि दयानन्द के जीवन काल से लेकर अब तक के विरोधियों विशेष रूप से ईसाइयों के लगभग सम्पूर्ण साहित्य और उनके प्रत्युत्तर में प्रकाशित आर्य लेखकों के भी सारे साहित्य पर नये सिरे से दृष्टि डालने का एक नया प्रयास किया। महर्षि के जीवन-चरित्र पर भी एक बार गम्भीर चिन्तन-मन्थन किया। ऐसा करते हुए पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के इस विषय में एक सन्देश का स्मरण हो आना स्वाभाविक था। ''आर्यो! यह एक ऋषि महर्षि का, एक यति योगी, बाल ब्रह्मचारी, वेदज्ञ का जीवन-चरित्र है। इसे पुस्तक समझकर मत पढ़िये। इसका श्रद्धा भक्ति से पाठ करिये।''

इस कार्य को करते हुए 'स्वामी दयानन्द और भारत में ईसाइयत' का भी हमने अवलोकन किया। इसमें मैक्समूलर की अन्तिम पुस्तक का इसमें कतई उल्लेख नहीं और न ही उसके किसी आक्षेप का उत्तर-प्रत्युत्तर है। इसके विपरीत इस पुस्तक के पृष्ठ १९० पर लिखा मिलता है **''कर्नल और मैडम की स्वामी दयानन्द से प्रथम भेंट सहारनपुर में हुई।''**

यह कदम एकदम निराधार है। ऋषि दयानन्द जी ३० अप्रैल की कर्नल व मैडम की थियोसोफिकल सोसाइटी की कथित बैठक में सम्मिलित कैसे हो गये? **वे तो ३० अप्रैल के दिन सहारनपुर में थे ही नहीं।** उस दिन वह देहरादून में थे। इसी पृष्ठ पर आगे लिखा है, **''परन्तु वास्तव में स्वामी जी ने उस समय क्या कहा था, यह ठीक-ठीक जानना कठिन है।''** ऋषि सहारनपुर में थे ही नहीं तो वहाँ कहा- क्या का प्रश्न ही नहीं उठता। हमने सम्पूर्ण जीवन-चरित्र आदि अपने ग्रन्थों में, श्री हरबिलास जी शारदा ने अपने ग्रन्थ में तथा श्रीयुत जीयालाल जैनी जैसे ऋषि के घोर विरोधी ने भी अपनी पुस्तक में कर्नल व मैडम द्वारा गढ़ी गई इस गप्प की अच्छी पोल खोली है। यह सारी कहानी महाझूठ है।

पादरी स्कॉट का ऐतिहासिक कथन- पादरी स्कॉट ने महर्षि के गम्भीर पाण्डित्य पर एक अद्‌भुत वाक्य कहा था और चाँदापुर में एक गोरे बदमाश व्यक्ति से ऋषि के शरीर की उपमा दी थी। ऋषि की उदारता तथा सहनशीलता तब दर्शनीय थी। इस पुस्तक में ये दोनों गौरवपूर्ण प्रसंग न पाकर हमें आश्चर्य नहीं हुआ। ऐसे प्रसंग तो पं. लेखराम के पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के वंश का कोई ऋषि भक्त ही खोजकर दे सकता है।

स्वर्णिम अतीत की प्यारी-प्यारी झाँकी- हृदय में उत्साह हो, आशावाद हो, उमंगें हों और वलवले हों इसके लिये तो अतीत के प्राणवीरों, धर्मवीरों और कौमी फ़कीरों की कहानियों को यदा-कदा सुनते-सुनाते रहना चाहिये। दो कृपालु महानुभावों की प्रेरणा से महात्मा आनन्द स्वामी जी तथा महाशय कृष्ण जी पर एक-एक बृहत् ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया है। इसके लिये अनेक अलभ्य स्रोतों (documents) का सूक्ष्म अध्ययन चल रहा है। यह चिन्ता नहीं कि जिन्होंने आज्ञा दी है वही ये ग्रन्थ छपवायेंगे अथवा कोई और। परमदेव प्रभु अपने वैदिक मिशन की रक्षा के लिये इस लेखक पर कृपा-दृष्टि करते ही रहते हैं।

सन् १९४० के आर्यगजट के ऋष्यांक से महात्मा आनन्द स्वामी का लेख अनुवाद के लिये निकाला तो उसमें एक **'वनवासी'** द्वारा लिखा गया एक प्यारा-प्यारा लेख पढ़कर यह सेवक झूम उठा। श्रद्धा से नयन सजल हो गये। लेख का सार यहाँ भावी पीढ़ियों के जीवन-निर्माण व कल्याण के लिये दिया जाता है। लेखक फ़रवरी १८९४ की घटना देता है। शीत ऋतु में क़्वेटा (बलूचिस्तान) में रात्रि-समय वह और उसका दूसरा भाई अपनी-अपनी चारपाई पर पढ़ाई करने में मगन थे। कानों में गली से निकल रहे एक भक्त के एक मधुर गीत की तान ने इन दोनों को बाँध लिया। गीत की एक पंक्ति ही याद रही-

'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।'

दयामय और शुद्धताई क्या है? यह तो वे न समझ सके, परन्तु गाने वाले के मधुर स्वर को वे भूल न पाये। उनको अपने पिता से पता चला कि यह गाने वाला एक आर्यसमाजी है। आर्यसमाजी कौन होता है? यह पिता से पूछने की हिम्मत नहीं थी। गायक इन दो बच्चों के हृदय में घुस गया।

अगली रात वह आर्यसमाजी फिर वैसे ही गीत गाता उनके घर के सामने से निकला। उनके पिताजी ने कहा, ''यह उनका एक मित्र है।'' दो-चार दिन में जब वे बच्चे स्कूल से घर पहुँचे तो वही व्यक्ति उनके घर में प्रविष्ट हुआ। नमस्ते करके वह लम्बा चौड़ा, सुन्दर, स्वस्थ, लट्ठधारी, सुडौल आर्य उनके पिताजी के पास बैठ गया। आर्यसमाज में स्वामी पूर्णानन्द जी की व्याख्यानमाला सुनने की प्रबल प्रेरणा दी और कहा, मैं छः बजे आपको लेने आ जाऊँगा। बच्चों को भी प्रेरणा दी। नियत समय पर वह आर्य मिशनरी इन सबको समाज मन्दिर में ले जाने के लिये आ गया। वहाँ एक आर्य बाजा बजा रहा था, एक ढोलक और एक तबला बजा रहा था।

ढोलक बजाने वाले समाज के प्रधान श्री लद्धाराम जी के सुपुत्र श्री लाजपतराय इंजीनियर थे। तबला बजाने वाले उस युग के आर्यसमाज के यशस्वी दानी व्यापारी बाबा प्रद्युम्न सिंह जी अमृतसर वाले थे। इस लेखक ने इनके दोनों पुत्रों बाबा गुरमुख सिंह तथा महाराज सिंह जी को देखा था। उस गाने वाले आर्य मिशनरी ने उन दोनों बच्चों पर आर्य-धर्म का रंग चढ़ा दिया। वे नियमपूर्वक समाज के सत्संगों में जाने लग गये। एक दिन द्वार पर किसी ने आवाज लगाई, ''आर्यसमाज के लिये दान दीजिये।'' बच्चों को उनकी माता ने कहा, ''कोने में टिन के डिब्बे में आटा भरा रखा है। बाहर जाकर दे आओ।'' यह भिक्षु वही प्रद्युम्न सिंह था। भिक्षा एकत्र करने वाले के कंधे पर २५-३० सेर आटे की बोरी थी। वह भिक्षु आशीर्वाद व धन्यवाद देकर कन्धे पर बोरी उठाकर चल दिया। उसके सेवा-भाव व मस्ती को देख-देखकर वे दोनों बच्चे ऋषि मिशन के दीवाने बन गये। श्री पं. त्रिलोकचन्द्र जी और महात्मा आनन्द स्वामी जी के मुख से बाबा प्रद्युमन सिंह जी की सुनी कहानियाँ फिर कभी देंगे।

मुद्रण दोष और आर्यसामाजिक साहित्य- पिछले एक अङ्क में हम कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर में दर्शाये गये दो मुद्रण दोषों की चर्चा कर रहे थे। कुछ चूक तो रह ही जाती हैं, परन्तु आर्यसमाज को अपने सैद्धान्तिक साहित्य में विशेष रूप से और अन्य-अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में बहुत सजग होकर मुद्रण-दोष दूर करने का प्रयास करना होगा। हमने कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर में कई प्रकार के दोष दूर करने के लिये भरसक श्रम किया। प्रमाणों के अते-पते मिलाने के लिये मूल स्रोतों यथा वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता, सत्यार्थप्रकाश, मूल उर्दू कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर, दीवाने हाफ़िज फारसी का तो भरपूर लाभ उठाया ही। शब्दकोशों की भी हमारे यहाँ कमी नहीं।

एक भूल हिन्दी अनुवाद में पहले के विद्वान् प्रूफ़रीडरों से हो गई। पृष्ठ ३९७ पर दूसरे भाग में पं. लेखराम जी ने यह फ़ारसी पद्य दिया है-

ख़ुशा बवद गर महक तजरबा आयद मियाँ।
ता सियाह रूए शबद हर कि दरोग़श बाशद।।

इन पंक्तियों का अर्थ है, मियाँ जी! यदि कसौटी पर परीक्षण और अनुभव हो जावें तो अच्छा है। जिससे जो कोई मिथ्यावादी है उसका मुख काला हो।

फ़ारसी लिपि में 'महक' शब्द दो प्रकार से लिखा जाता है। मूलतः 'महक' हिन्दी शब्द है। उर्दू में भी प्रचलन है। हिन्दी वाला महक 'है व हुआ' वाले फ़ारसी के 'ह' अक्षर से लिखा जाता है। ऊपर के फ़ारसी पद्य में अरबी भाषा का 'महक' शब्द है जिसका अर्थ कसौटी है और यह हज और हुक्का वाले 'ह' अक्षर से लिखा जाता है। पं. शान्तिप्रकाश जी तो अरबी के विद्वान् थे, परन्तु जगतकुमार जी इस अरबी शब्द को न समझ सके। आपने इसका अर्थ सुगंधि कर दिया। फ़ारसी में हिन्दी वाला महक प्रचलन में ही नहीं। यह भयङ्कर मुद्रणदोष मूल से मिलान करने से हम समझ पाये। धर्मरक्षा के ऐसे कार्यों में परिश्रम करना तथा पसीना बहाना पड़ता है।

बिना सोचे समझे लिखना व बोलना हानिकारक है- किसी सज्जन ने गत दिनों पं. रामचन्द्र जी देहलवी पर एक लेख दिया। उसने मेरे ग्रन्थ पर केवल ऊपरी दृष्टि डाली। ध्यान से ४०० पृष्ठों का वह गम्भीर ग्रन्थ नहीं पढ़ा।

उसने लिख दिया पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी लेखनी व वाणी के धनी थे। दो-तीन सज्जनों ने चलभाष पर पूछ लिया कि पण्डित जी ने कौन-कौन सी पुस्तक लिखी? उनकी एक-दो पुस्तकों का अनुवाद कर दीजिये। उन्हें बताया गया कि पूज्य पण्डित जी वाणी के तो सम्राट् थे, परन्तु लिखने से कतराते थे।'' यह सेवक भक्तिभाव से ५-७ वर्ष तक उन्हें कहता रहा कि आर्य सिद्धान्तों पर प्रश्नोत्तर रूप में ५००-६०० पृष्ठ का एक ग्रन्थ लिख दें। उत्तर दिया कि तुम्हारी दाढ़ी आने तक मेरा ग्रन्थ आ जावेगा।

दाढ़ी आ गई तो दाढ़ी दिखाते हुये कहा, ''लो! पण्डित जी मेरी दाढ़ी तो आ गई।'' वे हँस पड़े। बस अपवाद रूप में पाँच-सात लेख लिख दिये। बिना सोचे-समझे कल्पना से ऐसी-ऐसी घोषणायें करने से समाज का उपहास उड़ाया जाता है। इससे यश नहीं अपयश ही मिलता है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की पीड़ा- गत मास अमर स्वामी प्रकाशन के संचालक श्री लाजपतराय से भेंट हुई तो एक दु:खद प्रसंग चर्चा का विषय बन गया। रक्तरोदन के अतिरिक्त हम दोनों कर ही क्या सकते थे? पूज्य उपाध्याय जी ने एक बार लिखा था कि सभा संस्थाओं के आग्रह पर उन्होंने कुछ पुस्तकें लिखकर उन्हें प्रकाशनार्थ दीं। यह अनुभव उनके लिये बड़ा कष्टप्रद रहा। इसी प्रकार की चर्चा लाजपत जी से छिड़ गई। आर्य प्रादेशिक सभा के अधिकारी श्री दरबारीलाल व श्री रामनाथ सहगल थे। इनके मन में सभा का इतिहास लिखवाने तथा छपवाने का विचार आया।

श्री अमरस्वामी जी सभा के पुराने उपदेशक थे। उन्हें इतिहास लिखने का कार्य सौंपा गया। महात्मा आनन्द स्वामी जी से विचार-विमर्श करके आपने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इन दो का इस ग्रन्थ लेखन के समय यदा-कदा विचार-विमर्श होता रहता था। इन दोनों महात्माओं के अतिरिक्त एक तीसरा व्यक्ति भी इस ग्रन्थ की रचना में इनसे कुछ जुड़ा था जिसका पता बाबू दरबारीलाल को न चला। लाला सूर्यभान डी.ए.वी. के व सभा के प्रधान बने तो उन्हें इस तीसरे व्यक्ति के इस परियोजना के साथ कुछ-कुछ जुड़े होने की गन्ध आई। यह तीसरा व्यक्ति था राजेन्द्र 'जिज्ञासु'। अमरस्वामी जी ने जैसे-कैसे ग्रन्थ लिखकर पाण्डुलिपि बाबू श्री दरबारीलाल को सशर्त सौंप दी।

वह शर्त क्या थी?- शर्त दोनों महात्माओं की यह थी कि इच्छा व आदेश यह था कि पाण्डुलिपि पहले राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को दिखाई जावे। वह इसमें जो घटाना-बढ़ाना हो घटा बढ़ा दें अथवा बदल दें। **बस यही तो उस ग्रन्थ का दुर्भाग्य रहा।** बाबूजी यह सुनकर दंग रह गये। हमें इस शर्त की जानकारी बाबूजी ने ही दी और कहा, ''पाण्डुलिपि पर दृष्टि डाल दें फिर छपने चली जावेगी।''

उन्हें कहा गया, ''हमारा पुस्तकालय, सब documents अबोहर में हैं। वहाँ रजिस्टर्ड करके पाण्डुलिपि भेज दें। महात्माओं की आज्ञा सिर माथे पर। पूरी लगन व श्रद्धा से इस कार्य को सिरे चढ़ाने में सहयोग करूँगा।''

समय भागता गया। पाण्डुलिपि किसने देनी थी? लाला सूर्यभान अबोहर आये। बहुत गम्भीर मुद्रा में और बड़े प्रेम से हमें इस पाण्डुलिपि को देखने के लिये कहा। हमने कहा, बाबूजी को तभी कह दिया था कि भेज दीजिये। उन्होंने फिर कुछ न कहा और न किया। यह सुनकर प्रिं. सूर्यभान जी मौन हो गये। समय तीव्र गति से भागता गया। एक-एक करके दोनों महात्मा चल बसे। लाला सूर्यभान जी भी चल बसे और बाबू दरबारीलाल जी भी उनके पीछे-पीछे चले गये।

दोनों महात्मा टकटकी लगाकर पुस्तक के प्रकाशन की बाट जोह रहे थे। उन्होंने मेरे से भी सम्पर्क साधा। पूछताछ की। क्या बताता? महात्मा आनन्द स्वामी जी को बहुत धक्का लगा, परन्तु पीड़ा पी गये। उन्हें एक और भी धक्का लगा। आपने अपने देह-त्याग से कुछ पहले मुझे अत्यन्त स्नेह से याद किया। श्रीमती जिज्ञासु ने कहा, ''आप देर मत करें। हमारे इतने बड़े महात्मा ने इतने स्नेह से आपको याद किया है। हम बाल-बच्चों वाले हैं। समय पर मिलने न गये तो बहुत पाप लगेगा, सो अविलम्ब मिलने जायें।'' उनका देहत्याग का समय अति निकट दिख ही रहा था।

समय नष्ट किये बिना यह सेवक उनके चरणों में जालन्धर पहुँचा। वहाँ आपने अपनी एक और मनोवेदना व्यक्त कर दी। आपने अत्यन्त भावुक होकर कहा, ''आप जब जालन्धर पढ़ते थे तो प्राय: करके सभा के कार्यालय

आते रहते थे। आपने लाहौर से लाया गया सभा का सारा पुस्तकालय तब देखा था। एक बार दिल्ली जाकर पता करके मुझे सूचित करें कि वे दुर्लभ पुस्तकें कुछ बची भी हैं या नहीं?'' स्मरण रहे कि ये साहित्य श्री युद्धवीर लाये थे। ट्रकों में भरकर लाहौर से अमृतसर में बाबा गुरुमुखसिंह जी की कोठी में इन्हें सुरक्षित रखा गया। देहली जाकर जाँच पड़ताल की। वहाँ एक भी लाहौर से आई पुस्तक न पाई। श्री रामनाथ सहगल ने कहा, ''जो कुछ बचा है वह बोरियों में भरकर हमने डम्प कर दिया है। उसकी सूची आप रजिस्टर में देख सकते हैं। यह जानकारी पाकर महात्मा आनन्द स्वामी जी पर क्या बीती इसका अनुमान पाठक स्वयं ही लगा लें। हम कुछ भी नहीं कह सकते। समाज के राजरोग को दूर करने के लिये अब किसी उत्साही सज्जन की आवश्यकता है।''

वह ग्रामीण देवी फड़क उठी- हमारे उत्साही युवा आर्यवीर पण्डित लेखराम के मिशन की उर में आग लेकर ग्रामों में प्रचार-यात्रा करते हुए पाकस्मा ज़िला रोहतक पहुँचे। ग्राम में जयकारे लगाते, अन्धविश्वासों, गुरुडम, जातिवाद के उन्मूलन का खण्डन करते, गीत गाते जा रहे थे। एक दलित परिवार से जुड़ी आर्य महिला वैदिक धर्म, ऋषि दयानन्द के जयकारे सुनकर फड़क उठी। उसे सब पुराने आर्योपदेशक भजनीक याद आ गये। उसने गर्जकर कड़ककर हिंसक गुरुडम चलाने वाले बाबों के विरुद्ध आर्यसमाज के आन्दोलन की जी भर कर प्रशंसा की। उसने सबमें जोश भर दिया। आर्यसमाज के नेता, बड़ी-बड़ी सभायें घर से निकलकर प्रचार नहीं करतीं। वे युवक वन्दनीय हैं जो एक लम्बे समय से नियमपूर्वक दूर-दूर प्रचारार्थ जाकर इतिहास रच रहे हैं। वह अभय हों या विकास आर्य या श्री अमित सब आर्यमात्र के लिये वन्दनीय हैं।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का बलिदान तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी- देश भर में २३ जून को डॉ. श्यामाप्रसाद जी का बलिदान पर्व सोत्साह मनाया गया। उनके बलिदान की घटना की जाँच न करवाने का विषय बहुत योजनाबद्ध ढंग से उठाया गया। लेखक का किसी दल से कोई लेना-देना नहीं, परन्तु डॉ. मुखर्जी की हत्या के षड्यन्त्र की श्री नेहरू द्वारा जाँच न करवाने की हम भी घोर निन्दा करते हैं। डॉ. मुखर्जी के बलिदान पर कभी हमने धारदार लेख लिखे। आज संक्षेप से श्री नेहरू द्वारा डॉ. मुखर्जी का अपमान करने तथा उनकी हत्या के षड्यन्त्र पर चुप्पी साधने की दुर्नीति पर एकदम नया और प्रामाणिक प्रकाश डालते हैं। जब डॉ. मुखर्जी तथा निर्मलचन्द्र चटर्जी ने कश्मीर में धारा ३७० को हटाने के लिये चाँदनी चौक दिल्ली में सत्याग्रह-आन्दोलन की घोषणा करने के लिये सभा की तो मैं भी उस सभा में था। अकारण नेहरू सरकार ने अश्रुगैस के गोले छोड़े। शान्त सभा को पुलिस ने भंग किया। कहानी तो लम्बी है संक्षेप से कुछ तथ्य यहाँ दिये जाते हैं। डॉ. मुखर्जी और उनका दल पठानकोट से प्रतिबन्ध तोड़कर कश्मीर में प्रविष्ट हुआ। तब परमिट लेकर कोई कश्मीर में प्रवेश पा सकता था। सरकार की ओर से पंजाब के मुख्यमन्त्री को डॉ. मुखर्जी के पास भेजा गया कि उनको सरकार की सूचना दें कि वह ऐसा नहीं कर सकते।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी कभी काँग्रेस के अग्रणी नेता व स्वतन्त्रता सेनानी थे अपनी डायरी में लिखते हैं कि नेहरू ने श्री भीमसेन सच्चर (तत्कालीन मुख्यमन्त्री पंजाब) को लताड़ा कि तुमने डॉ. मुखर्जी के ठिकाने पर जाकर उसे क्यों सूचना दी? सच्चर जी ने कहा, **''मैं सड़क पर खड़ा उनकी प्रतीक्षा करता क्या अच्छा लगता था?''** परन्तु नेहरू को डॉ. मुखर्जी के ठिकाने पर उनका जाना चुभ गया।

डॉ. मुखर्जी की माता का अपने पुत्र की मौत पर नेहरू के नाम लिखा लम्बा दर्दनाक पत्र मैंने तभी पढ़ा था। उस माता की जाँच की माँग नेहरू ने निष्ठुरता से ठुकरा दी।

सेना में विद्रोह फैलाने के एकमेव अपराधी नेता और क्रान्तिकारी साधु स्वतन्त्रानन्द स्वामी की डायरियों में हमने पढ़ा और उनके जीवन-चरित्र में उनके शब्द उद्धृत किये हैं कि डॉ. मुखर्जी को मारा गया, उनकी हत्या की गई। पाठक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के एतद्विषयक वाक्य पढ़कर तड़प उठेंगे। शेख अब्दुल्ला के आगे समर्पण करके नेहरू ने देश का घात किया यह भी स्वामी जी ने लिखा है।

(शेष सप्रमाण फिर कभी)

प्रभु 'ख़ुरसन्द' है तेरा

महात्मा आनन्द स्वामी 'ख़ुरसन्द'

तुझे भगवान् अपने भक्त पुत्रों से भी प्यारे हैं।
भँवर में जब फँसे तेरी दया ने पार उतारे हैं।।
कठिन वक्तों में भेजा तूने उन मुक्त आत्माओं को।
जो तेरी ओर लाय रहबरों और रहनुमाओं को।।
यह रात इक यादगार इस तेरी कृपा की और दया की है।
कि तूने सत्य की इक जोत सीनों में जगा दी है।।
इसी शिवरात्रि को महर्षि ने ज्ञान पाया था।
इसी शिवरात्रि ने मान दुनिया का बढ़ाया था।।
यही शिवरात्रि है, तू है और 'ख़ुरसन्द' तेरा है।
इसे भिक्षा मिले स्वामी कि यह जोगी का है फेरा है।।

एक विशेष कृपालु प्रतिष्ठित आर्य पुरुष की प्रेरणा से महात्मा आनन्द स्वामी जी पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखने के लिये लेखनी उठाई है। १-३-१९३६ (८४ वर्ष पूर्व) आर्य गज़ट लाहौर के ऋषि बोध अंक में प्रकाशित उनका यह दुर्लभ हिन्दी गीत हमें मिला है। वह परोपकारिणी सभा के प्रधान रहे। 'परोपकारी' के पाठकों को भेंट करते हुये हमें एक विशेष आनन्द की अनुभूति हो रही है। महात्मा जी 'ख़ुरसन्द' उपनाम से उर्दू में यदा-कदा कवितायें लिखते रहे।

'जिज्ञासु'

ब्राह्मण वर्णों का काम

अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें, जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों, सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्ति, पढ़ानेहारों में प्रेमी, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आ जाय, इत्यादि ब्राह्मण वर्णों के काम हैं।

सच्ची दोस्ती

- योगेंद्र दम्माणी

बिछड़े दोस्तों को रेस्टोरेन्ट जाना था ,
मिल कर नॉनवेज खाना था।
फोन आने पर मैंने जब किया इंकार,
दोस्तों ने पूछा क्या नहीं है तुमको हमसे प्यार?

मैंने कहा इस दुलार के लिए,
क्या पुराना इकरार तोड़ दूँ?
क्या भूल जाऊँ सब जीवों ने,
हम पर किया कितना उपकार?

छोटा हो या मोटा, दूध पिलाती गइया,
लहरा-लहरा सुबह बाँग देता मुर्गा भइया,
उस अंडे ने समझाया , कैसे होता निर्माण,
बकरे तक ने दे दिया मेहनत का प्रमाण।

जल की रानी है मछली,
उससे सीखी तैराकी,
पक्षियों ने न सिर्फ उड़ने की चाहत जगाई,
घर-परिवार पालन की भी राह दिखाई।

कहो मित्र! इन उन सखाओं का उपकार कैसे भूलूँ,
मैं नॉनवेज कैसे चख लूँ।

हे मित्र! वर्क भी न खाया करो,
पनीर को भी अपनी थाली से हटाया करो।
बछड़े की आँत में पिट कर बनती है पत्ती,
हड्डियों के चूरे से जमती है चक्की।

दिल कहता है अपने को योगेंद्र बनाओ,
बंधु तुम भी शाकाहार अपनाओ।
मेरे मित्र भी बन गए मेरे सखा,
कहा वेज खाने का है अपना ही मजा।

कोलकाता

ऐतिहासिक कलम से....

वेदमूलक कथाएँ

डॉ. रामनाथ वेदालङ्कार

वेदों में अनेक स्थानों पर कथानक-शैली से विषयों को स्पष्ट किया गया है। अनेक वर्णन ऐसे भी हैं, जो वेद के कवि ने स्वयं तो कथारूप में प्रस्तुत नहीं किये, परन्तु उनको आधार बनाकर अनेक रोचक कथायें रची जा सकती हैं। वेद के इसी प्रकार के वर्णनों को लेकर महाभारत, पुराण, बृहद् देवता आदि ग्रन्थों में अनेक कथायें रच ली गई हैं, परन्तु उन कथाओं को पढ़ते हुये हमारा ध्यान इस ओर नहीं जाता कि वस्तुतः ये कथायें वेद के ही किन्हीं प्रसंगों को स्पष्ट करने वाली हैं। यहाँ हम इसी प्रकार की कुछ कथाओं का मूल वेद से दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

१. दधीचि की हड्डियों से वृत्र को मारने को कथा-

महाभारत तथा भागवत में एक कथा मिलती है, जिसमें दीधीचि की हड्डियों से वृत्र के संहार का वर्णन किया गया है। कथा का भाव इस प्रकार है- वृत्र नाम के एक दैत्यराज ने सारी त्रिलोकी में उपद्रव मचा रखा था। देवता भी उसके उपद्रवों से तंग आ गये थे। बहुत उपाय किये गये, परन्तु वह फिर भी नहीं मरा। उसे मारने का कोई उपाय न देख इन्द्र सहित सब देव ब्रह्मा जी के पास गये। उन्होंने कहा कि दधीचि नाम के एक तपस्वी ऋषि हैं, यदि वे अपने शरीर की हड्डियाँ दे दें तो उनसे वृत्र मर सकता है। तब देवों की प्रार्थना पर दधीचि ने अपना शरीर त्याग दिया। देवों ने उनकी हड्डियों से वज्र तैयार कराया और उसी से इन्द्र ने वृत्र को मारा।

इस कथा का मूल वेद में मिलता है। ऋग्वेद में दध्यङ् की हड्डियों से ९९ वृत्रों के मारे जाने का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव।।

ऋग् १.८४.१३

इस मन्त्र का सीधा-सादा अर्थ यह है कि "अद्वितीय इन्द्र ने दध्यङ् की हड्डियों के द्वारा ९९ वृत्रों का वध कर दिया।"

सबसे पहली बात हमें यह समझ लेनी चाहिए कि मन्त्र में यह कहीं नहीं लिखा कि मरे हुए दध्यङ् की हड्डियों से वृत्र का वध किया गया। यह तो कथाकारों की अपनी कल्पना है। मन्त्र का दध्यङ् तो जीता-जागता शूरवीर है। यदि निर्जीव हड्डियों की आवश्यकता होती तो किसी भी प्राणी की हड्डियों से वज्र बनाया जा सकता था। हड्डी-हड्डी तो सब एक-सी। यदि यह भी मान लिया जाये कि दध्यङ् की हड्डियाँ बहुत मजबूत थीं तो भी उनकी हड्डियों से अधिक मजबूत हड्डियाँ अन्य किन्हीं प्राणियों की भी हो सकती हैं। हड्डी को छोड़कर लोहे आदि धातु से भी तो वज्र बन सकता था। अतः स्पष्ट है कि मृत दध्यङ् की हड्डियों से नहीं, अपितु जीवित दध्यङ् की हड्डियों से वृत्र मरा। इन्द्र है राजा।

आधिदैविक दृष्टि से इन्द्र परमेश्वर है। दध्यङ् सूर्य है, उसकी हड्डियाँ हैं किरणें। ९९ वृत्र बादलों की अनेक टुकडियाँ हैं। अथर्ववेद में वृत्र रोग-कृमियों को भी कहा गया है, अतः अभिप्राय यह है कि इन्द्र परमेश्वर सूर्य की किरणों से बादल की टुकड़ियों को या अनेक रोग-कृमियों को विनष्ट कर देता है।

२. पानी के झाग से नमुचि का वध-

पानी के झाग से नमुचि के वध की कथा अनेक स्थानों पर मिलती है। वेद में इसका मूल इस प्रकार है-

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजयः स्पृधः।।

ऋग् ८.१४.१३

अर्थात् हे इन्द्र! तुमने जलों के झाग से नमुचि का सिर काटा डाला और समस्त स्पर्धालु शत्रुओं को जीत लिया। यहाँ विचारणीय है कि पानी के झाग से किसी दैत्य का सिर कैसे काटा जा सकता है और कैसे अनेक शत्रुओं को जीता जा सकता है। **वस्तुतः यहाँ पानी के झाग से अभिप्राय है-समुद्र झाग, जिसका प्रयोग आयुर्वेद में**

कई रोगों में किया जाता है। नमुचि का शब्दार्थ है न छोड़ने वाला-'न मुञ्चति इति नमुचिः'-ऐसा रोग जो शरीर को पकड़ कर बैठ गया है और छोड़ता नहीं। अन्य स्पर्धालु शत्रु भी विविध रोग हैं। उनको समुद्र झाग के प्रयोग से दूर करने का उपदेश इस मन्त्र से मिलता है।

'**अपां फेन**' का दूसरा अर्थ हो सकता है- **सात्त्विक वृत्ति। जल सत्त्वगुण के प्रतीक हैं। उनका झाग है सात्त्विक वृत्ति। उस सात्त्विक वृत्ति द्वारा मनुष्य के मन को पकड़ कर बैठे हुए नमुचि रूपी पापों का विनाश आसानी से किया जा सकता है।**

३. देवापि-शन्तनु की कथा-

निरुक्त में एक कथा का संकेत आया है कि देवापि और शन्तनु दो कुरुवंशी भाई थे। शन्तनु उनमें छोटा था। नियमानुसार राज्य बड़े भाई देवापि को मिलना चाहिए था। किन्तु शन्तनु छोटा होते हुए भी स्वयं राजा बन बैठा। यह देख देवापि तप करने वन को चला गया। शन्तनु ने बड़े भाई का अधिकार छीनकर अधर्म किया था, अतः १२ वर्ष तक राज्य में वृष्टि नहीं हुई। प्रजा भूखी मरने लगी। अब वह चिन्तित हुआ। ब्राह्मणों ने उसे कहा कि तूने अधर्म किया है, इसलिए वर्षा नहीं होती। तब वह बड़े भाई को मनाने पहुँचा। देवापि ने कहा कि अब मैं राज्य तो नहीं लूँगा, तुम वृष्टि-यज्ञ करो, मैं तुम्हारा पुरोहित बन जाऊँगा। ऐसा ही किया गया, तब राज्य में वर्षा हो गई।

इस कथा का मूल वेद में है। ऋग्वेद वृष्टियज्ञ का वर्णन करते हुए कहता है-

यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत्।।

ऋग् १०.९८.७

राजा शन्तनु यज्ञ करने के लिए देवापि को पुरोहित बनाता है। यह देवापि 'राज्य में वर्षा हो' ऐसा मन में ध्यान करता है। वह वर्षा की याचना करता हुआ यज्ञ कर रहा है। उसके मन्त्र-पाठ में कोई त्रुटि सम्भावित हो तो बृहस्पति नामक ब्रह्मा उस त्रुटि के निवारणार्थ उपस्थित है।

वेद में वर्णित 'शन्तनु' तथा 'देवापि' किसी राजा विशेष के नाम नहीं है, प्रत्युत ये दोनों शब्द गुणों के सूचक हैं। यास्क ने शन्तनु का अर्थ किया है-

''शन्तनुः=शन्तनोऽस्त्विति वा शमस्मै तन्वा अस्त्विति वा।''

यह 'शम्' और 'तनु' दो शब्दों से मिलकर बना है। प्रजाजनों के तनु के स्वास्थ्य, प्रसन्नता तथा सुख को चाहने वाला राजा शन्तनु कहलाता है। या यों कहिये कि 'शन्तनु' नाम से राजा का यह गुण द्योतित होता है। यदि कभी दैवयोग से इसके राज्य में अनावृष्टि हो जाये तो उसे देवापि, गुण वाले व्यक्ति को ही पुरोहित बनाकर यज्ञ कराना चाहिए। **''देवानाप्नोतीति देवापिः''** अर्थात् वह उच्च विद्वान् जिसने देव को अर्थात् भगवान् को या दिव्य गुणों को प्राप्त कर रखा हो। मन्त्र में 'देवापि' का विशेषण 'देवश्रुत' पढ़ा गया है, जिससे 'देवापि' का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। 'देव' का अर्थ बादल भी होता है, जो बादल को प्राप्त कर सकता है अर्थात् जिसमें बादल को बरसाकर जमीन पर ले आने का सामर्थ्य हो वह निपुण व्यक्ति 'देवापि' कहलायेगा।

४. मित्रावरुण और उर्वशी से वसिष्ठ की उत्पत्ति-

पुराणों में लिखा है कि ''उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर मित्र-वरुण का रेतस् स्खलित हुआ, वह घड़े में जा गिरा, उससे वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई।'' इस कथा का मूल भी वेद में है।

ऋग्वेद में वसिष्ठ के जन्म के सम्बन्ध में लिखा है-

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त।।

ऋग् ७.३३.११

वेद का यह वसिष्ठ पौराणिक मुनि-विशेष नहीं है, अपितु यह वर्षा की बूंद है। मित्र और वरुण दो वायुएं हैं, जो वर्षा में सहायक होती हैं। उर्वशी विद्युत् है। जब मित्र-वरुण वायुओं का मेल होता है और आकाश में बिजली चमकती है तब वर्षा होती है। इस प्रकार वर्षा जल उर्वशी तथा मित्र-वरुण का पुत्र होता है और मन्त्र के वर्णन के अनुसार बूंद रूप में बरस कर वह तालाब आदि में चला जाता है।

वेद में रेतस् के कुम्भ में गिरने का उल्लेख भी है- कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्। परन्तु रेतस् निघण्टु के अनुसार जलवाची है और कुम्भ साधारण घड़ा न होकर भूतल रूपी घट है, जिसमें वर्षा जल आकर गिरता है।

५. विष्णु के तीन कदमों की कहानी-

भागवत् पुराण में एक कथा वर्णित है कि प्राचीन काल में बलि नाम का एक पुण्यकर्मा दैत्य इन्द्र पद की प्राप्ति के लिए यज्ञ करने लगा। इन्द्र अपने पद के छिनने के भय से विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने इन्द्र की समस्या को सुना और ब्राह्मण का रूप धारण करके बलि के पास गये। बलि उस समय तक सब कुछ ब्राह्मणों को दान में दे चुके थे। बलि ने उनसे पूछा आपको क्या चाहिए। विष्णु ने कहा- मुझे केवल तीन कदम भूमि दे दो। बलि ने तीन कदम भूमि लेने की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पाकर वामनरूपधारी विष्णु ने अपना पहला कदम भूमि पर, दूसरा कदम आकाश में तथा तीसरा कदम बलि के सिर पर रख दिया।

इस कथा का मूल भी वेद में है। ऋग्वेद में विष्णु द्वारा तीन कदम रखने का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम् एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः।।

ऋग् १.१५४.३

अभिप्राय यह है कि विष्णु ने लम्बे-चौड़े इस लोक को अपने तीन कदमों में नाप लिया। इसी प्रकार यजुर्वेद में भी विष्णु के तीन पग रखने का उल्लेख मिलता है-

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा।।

यजु. ५.१५

वस्तुतः वेद का विष्णु पद ''वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगत् इति विष्णुः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर सर्वव्यापकता को सूचित करता है। इसलिए इन मन्त्रों में 'तीन कदम से त्रिलोकी को नापने' का उल्लेख करके वेद में परमात्मा की सर्वव्यापकता का काव्यमय वर्णन किया गया है।

६. पर्वतों के पंख काटने की कथा-

पुराणों में कथा मिलती है कि पहले पर्वतों के पंख होते थे। ये आकाश में उड़कर जहाँ-तहाँ जाकर बैठ जाते थे, जिससे बड़ा विनाश होता था। इन्द्र ने उनके पंख काट दिये। तब से पर्वत स्थिर हो गए हैं। मैनाक इन्द्र के भय से जा छिपा। इस कथा का मूल भी वेद में इस प्रकार मिलता है-

यः पृथिवीं व्यथमानाम् अदृंहत्
यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो
द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।

ऋग् २.१२.२

इस मन्त्र में कहा है कि इन्द्र ने प्रकुपित पर्वतों को स्थिर किया। वेद में 'पर्वत' शब्द के अर्थ बादल तथा पहाड़ दोनों ही होते हैं। बादल प्रकृपित होकर इधर-उधर उड़ते ही हैं। इन्द्र उनके पंख काटकर पृथ्वी पर गिरा देता है। दूसरे प्रकुपित पर्वतों का अर्थ ज्वालामुखी पहाड़ भी लिया जा सकता है। प्रारम्भ में जब शनैः-शनैः पृथ्वी गैस अवस्था से-द्रवावस्था से ठोस अवस्था में आई, उस समय पृथ्वी पर अनेक ज्वालामुखी थे, क्योंकि पृथ्वी का ऊपर का पृष्ठ तो ठण्डा हो कर ठोस हो गया था, जैसे कि दूध के ऊपर ठोस मलाई आ जाती है, परन्तु अन्दर खौलता हुआ द्रव भरा था। वह पृथ्वी के पृष्ठ को फाड़कर ऊपर निकलता था। धीरे-धीरे पृथ्वी अन्दर से भी ठण्डी होती गई और तब इन ज्वालामुखियों के पंख कटते गये अर्थात् वे शान्त होते गये।

७. शुनःशेप को यज्ञस्तम्भ से बाँधने की कथा-

ऐतरेय ब्राह्मण में कथा आती है कि हरिश्चन्द्र नाम का एक राजा था। उसके पुत्र उत्पन्न नहीं होता था। उसने वरुण की स्तुति की और कहा कि मेरे पुत्र उत्पन्न हो जाये तो मैं तुम्हारे लिए उसकी बलि चढ़ाऊँगा। वरुण की कृपा से पुत्र उत्पन्न हो गया, जिसका नाम रोहित रखा गया। वरुण ने बलि माँगी तो राजा टालते रहे कि इसके दाँत निकल जाने दो, इसे बड़ा हो जाने दो, आदि। बड़ा हो जाने पर वह पिता के वश से बाहर होकर जंगल में भाग गया। वरुण ने राजा को जलोदर रोग से पीड़ित कर दिया। तब रोहित जंगल से अजीगर्त ऋषि के शुनःशेप नामक पुत्र को सौ गौएं देकर खरीद लाया। रोहित के बदले उसे शुनःशेप को बलिदान देने के लिए ऊपर, मध्य में और नीचे तीनों स्थानों पर यज्ञस्तम्भ से बाँध दिया गया। तब उसने अपनी मुक्ति के लिए वरुणादि की स्तुति की। यह कथा ऋग्वेद के कुछ वरुण सूक्तों के आधार पर रची गई है। एक मन्त्र यह है-

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वान् अदब्धो वि
मुमोक्तु पाशान्।।

ऋग् १.२४.१३

अर्थात् स्तम्भ में तीन स्थानों पर बँधा हुआ शुनःशेप आदित्य वरुण को पुकार रहा है। विद्वान्-वह वरुण राजा इसके पाशों को मुक्त कर दे।

वस्तुतः शुनःशेप मनुष्य की आत्मा है। 'श्वा' का अर्थ होता है गतिशील। 'शेप' का अर्थ स्वरूप है। ''शुनःशेपः इव शेपो यस्य स शुनःशेपः।'' अर्थात् गतिशील या उन्नतिशील स्वरूप वाला। वह शरीररूप यज्ञस्तम्भ में सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के कर्मबन्धनों से बँधा हुआ है। वह मुक्ति के लिए आतुर होकर प्रार्थना करता है कि मुझे तीनों बन्धनों से मुक्त कर दो।

८. राजा सुदास के युद्ध की कथा-

दस शत्रु-राजाओं के साथ तृत्सुओं के राजा सुदास् के युद्ध की ऐतिहासिक कथा का मूल भी ऋग्वेद में मिलता है। सप्तम मण्डल का ८३ वाँ सूक्त उनकी विजय के उपरान्त विजय दिलवाने वाले इन्द्र तथा वरुण देवों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए लिखा गया है। वहाँ कहा गया है कि शत्रु राजा हाथ में पशु लिये हुए सुदास् की भूमि जीतने आगे बढ़े चले आ रहे थे। आकाश में घोष उठ रहे थे। शत्रु बिल्कुल समीप आ पहुँचे थे। दसों राजाओं से सुदास् बुरी तरह घिर गया। ऐसी अवस्था में इन्द्र-वरुण ने सुदास् को विजय दिलाई।

सम्भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षत्
इन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा
हवनश्रुता गतम्।।

दाशराज्ञे परियत्ताय
विश्वतः सुदासमिन्द्रावरुणावशिक्षतम्।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो,
धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः।।

ऋग् ७.८३.३,८

निरुक्त के अनुसार सुदास् का अर्थ है शुभदानी, प्रजा का कल्याण करने वाला-''सुदाः कल्याणः।'' आदर्श राजा को ऐसा ही होना चाहिए। तृत्सु उसके सैनिक हैं। तृत्सु का अर्थ है संहारक, शत्रुओं का संहार करने में समर्थ-''तृद् हिंसानादरयोः।'' इन्द्र और वरुण का स्वरूप बताते हुए वेद स्वयं कहता है-

वृत्राणि अन्यः समिथेषु जिघ्नते, व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
कृष्टोरन्यो धारयति प्रविक्ता, वृत्राण्यती अप्रतीनि हन्ति।।

ऋग् ७.८३.९-७.८५.३

इन्द्र है प्रधान सेनाध्यक्ष, जो युद्ध में शत्रुओं का संहार करता है। वरुण युद्ध के मोर्चे पर न जाकर पीछे राज्य में रहकर प्रजा को धारण करने वाला और वहाँ के कार्यों की देखभाल व रक्षा करने वाला राज्याधिकारी है। इन्हीं दोनों की सहायता से सुदास् गुण वाला राजा प्रबल से प्रबल शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करता है। यही इस कथा का रहस्य है।

अस्तु। इस प्रकार हमने कुछ कथाओं का मूल वेद में दिखलाने का प्रयत्न किया है और वैदिक दृष्टि से उसके सत्यार्थ का भी संकेत किया है। यह दृष्टिकोण अपनाते हुए यदि प्रचलित कथाओं का अवलोकन किया जाये तो महाभारत, पुराण आदि की कथाओं का सत्य अर्थ प्रकाश में आ सकता है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थ प्रामाण्य प्रकरण में अनेक कथाओं का सत्यार्थ देकर इस दिशा में विचार करने के लिए प्रेरणा दी है।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. १५ से २२ सितम्बर, २०१९- **योग-साधना शिविर**

२. ०१, ०२, ०३ नवम्बर २०१९- **ऋषि मेला**

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

भगवान् जी! मैं तुमसे झगड़ना चाहता हूँ

कन्हैयालाल आर्य

एक दिन मैं भगवान् जी के दरबार में पहुँचा। वहाँ पर खड़े दरबान ने मुझे रोकने का प्रयास किया। मैं तो पृथ्वीलोक से आया था और सारे ढंग जानता था तो आप समझ गये होंगे कि मैं भगवान् जी के सामने प्रस्तुत हुआ और उन्हें जाकर अपना प्रार्थना-पत्र दिया जिसका शीर्षक था, ''भगवान् जी, मैं आपसे लड़ना चाहता हूँ।'' भगवान् जी मुस्करा दिये और कहने लगे, ''आर्य जी! क्या बात है? आप मुझसे लड़ना क्यों चाहते हैं?''

मैंने उत्तर दिया, ''भगवान् जी! मैं प्रतिदिन प्रातः काल आपकी पूजा-अर्चना करता हूँ। मैं सदैव इस मन्त्र को दोहराता हूँ-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

मैं प्रतिदिन यह मन्त्र बोलकर गिड़गिड़ाता हूँ, परन्तु एक आप हैं कि मेरे प्रार्थना-पत्र पर ध्यान ही नहीं देते। मैं तुम्हें माता, पिता, बन्धु, सखा कहता हूँ, तुम्हीं मेरी विद्या हो, तुम्हीं मेरे धन हो, तुम ही मेरे सब कुछ हो, परन्तु आप मेरी ओर देखते भी नहीं। मैं पुनः पुनः एक ही बात कहता हूँ कि मैं जन्म-जन्मान्तरों से नाना प्रकार की योनियों में भटक रहा हूँ। बार-बार जन्म लेता हूँ। बार-बार मृत्यु का शिकार होता हूँ। आप मेरी सुध क्यों नहीं लेते हो? आपकी कृपा से मुझे न जाने कितनी योनियों के पश्चात् यह मानव का शरीर मिला है। न जाने, फिर कब मिले? आप स्वयं कहते हैं कि मनुष्य योनि के अतिरिक्त जितनी भी योनियाँ हैं, सभी भोग योनियाँ है। केवल यह मनुष्य योनि ही भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि भी है और किसी भी योनि में हमें कर्म करने का अधिकार नहीं है। वे सब योनियाँ परतन्त्र योनियाँ है, परन्तु यही एक मानव की योनि ऐसी है जो कर्म करने में स्वतन्त्र है। जब मेरी इस योनि में कर्म की स्वतन्त्रता है तो फिर आप मुझसे अच्छे कर्म करा लो, मेरा उद्धार कर दो, मुझे अपनी शरण में ले लो, परन्तु आप मेरी सुनते कहाँ हैं?''

भगवान् जी मुस्कराये और कहने लगे, ''प्रिय पुत्र! तुम पृथ्वीलोक से आये हो, तुम्हारे पृथ्वीलोक में तुम्हारे जन्म के पिता तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करते हैं, जब तुम्हें उनसे कुछ लेना होता है।'' मैंने उत्तर दिया, ''जब प्रार्थना करने पर भी मेरा जन्मदाता पिता मुझे टॉफी नहीं देता तो मैं पहले तो विभिन्न प्रकार की क्रियायें करके उनसे टॉफी माँगता हूँ, जब नहीं देते तो मैं पृथ्वी पर लेट जाता हूँ, चीखता हूँ, चिल्लाता हूँ। इतना ही नहीं मैं अपने कपड़े तक फाड़ देता हूँ। मेरी इन सारी क्रियाओं को देखकर मेरा इस जन्म का पिता मुझ पर दयालु हो जाता है और वह मुझे टॉफी दिला देता है। इसी प्रकार मैं भी आपके सामने कब से गिड़गिड़ा रहा हूँ? परन्तु आप हैं कि मेरी एक भी नहीं सुन रहे।''

भगवान् जी सोचने लगे और उन्होंने कहा, ''आर्य जी! आज तुमने मुझसे झगड़ा करने का मन क्यों बनाया?'' मैंने कहा, ''मुझे पता है कि आप मेरे पिता हैं, ऋग्वेद मण्डल एक, सूक्त संख्या एक, मन्त्र संख्या ९ में कहा है-

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।

हे भगवन्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है वैसे ही आप मुझे शुभ गुण और शुभ कर्मों से सदैव युक्त कीजिये।''

अब भगवन्! आप ही बताइये कि मैं आपसे झगड़ा क्यों न करूँ? आप ही तो मेरा मार्गदर्शन कर सकते हैं और फिर भगवान् जी! एक बात और रहस्य की बताऊँ यदि मैं किसी और से झगड़ता तो वह मेरी हड्डी-पसली तोड़ देता, परन्तु आप तो मेरे पिता हैं, फिर आप मेरी हानि क्यों करने लगेंगे। इसलिए आप से ही झगड़ा करने पर मुझे हड्डी-पसली तुड़वाने का भी कोई भय नहीं है। दूसरी बात यह है कि आप मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, मेरे साथ झगड़ा नहीं कर सकते। फिर झगड़ा करने के लिए शरीर चाहिये, परन्तु आपने तो यजुर्वेद के ४०/८ मन्त्र में कहा है कि आप शरीर-रहित हैं।

''स पर्यगात् शुक्रं, अकायम्'' आप शरीर-रहित हैं, इसलिए मेरे साथ आप झगड़ा भी नहीं कर सकते। भगवान् ने उत्तर दिया, ''आर्य जी! बड़े चतुर हो मेरे इस अकायम् भाव

का लाभ उठाना चाह रहे हो, यह तो उचित नीति नहीं है।'' मैंने भगवान् जी से कहा, ''इतना ही नहीं आप केवल 'अकायम्' ही नहीं 'निराकार' भी हैं और झगड़ा करने के लिए साकार शरीर की आवश्यकता होती है।''

भगवान् जी कहने लगे, ''आर्य जी! यह ठीक है कि मैं निराकार हूँ यदि मैं साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। मेरे निराकार विषय में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है और यदि मैं व्यापक न होता, तो सर्वज्ञादि गुण भी न हो सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म-स्वभाव भी परिमित होते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोगदोष, छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यह निश्चित है कि मैं निराकार हूँ और जो साकार होता, तो उसके आकार बनाने वाला दूसरा होना चाहिये क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य चाहिये। यदि तुम यह कहो कि मैंने अपना शरीर बना लिया, तो यही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने से पूर्व निराकार था। इसलिए मैं शरीर धारण न करता हुआ निराकार होकर सब जगत् को सूक्ष्म आकार से स्थूलाकार बनाता हूँ।''

भगवान् जी ने पुनः कहना प्रारम्भ कर दिया, ''आर्य, तुम मुझे नहीं जानते, मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, मैं तुम्हारा बहुत कुछ बिगाड़ सकता हूँ?'' मैंने कहा भगवान् जी! ''सर्वशक्तिमान् का इतना अर्थ है कि आप को काम करने के लिए दूसरे का सहाय नहीं लेना पड़ता, आप स्वसामर्थ्य ही से सब काम पूरा कर लेते हैं, परन्तु आप सर्वशक्तिमान् हैं तो क्या आप अपने को मार सकते हैं, क्या आप दूसरा भगवान् बना सकते हैं, क्या आप स्वयं अविद्वान् बन सकते हैं? क्या आप चोरी आदि पाप कर सकते हैं? क्या आप दुःखी हो सकते हैं? नहीं आप ये सब काम आप नहीं कर सकते हैं? भगवान् जी! ये सब काम आपके गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध हैं इसलिए आप मुझे सर्वशक्तिमान् होने का भय मत दिखाइये!'' भगवान् जी ने कहा, ''आर्य जी, मेरे द्वारा रचित वेद के प्रमाण देकर तथा मेरे प्रिय शिष्य महर्षि दयानन्द जी की पुस्तक सत्यार्थप्रकाश का उदाहरण देकर तुम मुझे चुप कराने का प्रयास कर रहे हो, यह बात तो ठीक नहीं है।''

मैंने कहा, ''भगवान्! मैं आपकी स्तुति, प्रार्थना उपासना इसलिए करना चाहता हूँ कि आप मेरे पाप क्षमा कर देंगे।'' भगवान् जी ने उत्तर दिया, ''कैसी बच्चों जैसी बातें करते रहते हो। मेरे न्याय में तो यह है- **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**'' अवश्य किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इसलिए मैं तुम्हारे पाप क्षमा नहीं करूँगा। मैं अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप नहीं छुड़ता। मैंने कहा, ''भगवन्! मैं फिर क्यों आपकी स्तुति प्रार्थना करूँ?'' भगवान् जी ने कहा, ''आर्य जी! स्तुति से मुझ में प्रीति, मेरे गुण-कर्म-स्वभाव से तुम्हारे गुण-कर्म-स्वभाव का सुधरना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और साहस की प्राप्ति होगी। उपासना से मुझ से मेल होगा और मेरा साक्षात्कार तुम कर सकोगे।''

मैंने कहा, ''भगवान् जी! इनको स्पष्ट करके समझाओ।'' भगवान् जी कहने लगे, ''आर्य जी! मेरी स्तुति, प्रार्थना, उपासना का क्या फल है, यदि तुम इसकी सटीक और सुन्दर व्याख्या जानना चाहते हो तो मैं पुनः कह रहा हूँ कि तुम पृथ्वीलोक जाकर आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में (ईश्वर विषय) नामक अंशों का अध्ययन करो, तुम्हारे सारे भ्रम टूट जायेंगे, क्योंकि उसमें ऋषि दयानन्द जी ने स्तुति में यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ८ वें मन्त्र, प्रार्थना में यजुर्वेद के १६ वें अध्याय का १५ वाँ मन्त्र, उन्नीसवें अध्याय के ९ वें मन्त्र, बत्तीसवें अध्याय के १४ वें मन्त्र, चौंतीसवें अध्याय के १ से ६ मन्त्र, चालीसवें अध्याय का दूसरा तथा १२ वाँ मन्त्र, १६ वाँ मन्त्र शतपथ ब्राह्मण का (१४/३/१/३०) का वचन दिया है और उपासना में मैत्रायणी उपनिषद् (४/४/९), पातञ्जल योगशास्त्र साधन पाद सूत्र सं. ३० एवं ३२ दिये हैं। इनके फल जानकर तुम मेरे प्रति प्रीति करनी प्रारम्भ कर दोगे। महर्षि दयानन्द जी ने इनका फल इस प्रकार वर्णन किया है-

''जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे मेरे समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर मेरे गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार तुझ जीवात्म के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए मेरी स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु तुम्हारी आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि तुम पर्वत के समान दुःख प्राप्त करने पर भी घबराओगे

नहीं और सब को सहन कर सकोगे। क्या यह छोटी बात है? और जो मेरी स्तुति, प्रार्थना, उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि मैंने इस जगत् के पदार्थ जीवों के सुख के लिए दे रखे हैं, उसका गुण भूल जाना, मुझ को ही न मानना 'कृतघ्नता' और 'मूर्खता' से कम नहीं है।''

मुझे लग रहा था कि मैं व्यर्थ ही भगवान् जी से झगड़ा करने आ गया हूँ, परन्तु मुझे एक शंका और हुई। मैंने कहा, ''भगवान् जी! आपके तो श्रोत्र, नेत्र, इन्द्रियाँ नहीं हैं फिर आप इन इन्द्रियों के बिना कैसे काम कर सकते हैं?'' भगवान् जी ने कहा, ''आर्य जी! तुम बहुत भोले हो। लगता है तुमने श्वेताश्वतर उपनिषद् (३/१९) का वचन नहीं पढ़ा है उसमें तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर है-

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।

मेरे हाथ नहीं है, परन्तु मैं अपने शक्तिरूप हाथ से सबका रचन, ग्रहण करता हूँ। मेरे पग नहीं है, परन्तु मैं व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान्, मेरे चक्षु का गोलक नहीं, परन्तु सबको यथावत देखता हूँ, मेरे श्रोत्र नहीं, परन्तु सबकी बात सुनता हूँ, अन्तःकरण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता हूँ और मुझे अविध सहित जानने वाला कोई भी नहीं मुझे ही सनातन, श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने पर पुरुष कहते हैं। मैं इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता हूँ।''

जिस गति से झगड़ने का विचार बनाकर मैं भगवान् जी के पास आया था, अब मेरे कुछ-कुछ भ्रम टूट रहे थे फिर भी कुछ शंकायें शेष थीं। मैंने कहा, ''भगवन्! लोग कहते हैं कि आप अवतार लेते हैं और लोग भगवद्गीता के चौथे अध्याय के ७ वें श्लोक का वर्णन करते हैं, यह कहाँ तक सत्य है?'' वे कहते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

श्रीकृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं, ''जब-जब धर्म का लोप होता है तब मैं शरीर धारण करता हूँ।'' भगवान् जी ने कहा, ''यह बात वेद-विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं है क्योंकि वेद अपौरुषेय है, परन्तु ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे, धर्म की रक्षा करना चाहते थे तभी कह दिया होगा कि वे युग-युग में जन्म ले के श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करें तो कोई दोष नहीं, क्योंकि '**परोपकाराय सतां विभूतयः**' परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है तथापि इससे श्रीकृष्ण जी मेरे समान ईश्वर नहीं हो सकते।'', परन्तु मुझसे रहा नहीं गया। मैं बोल बैठा, ''भगवन्! आपके कथनानुसार मैं मान लेता हूँ कि आप अवतार नहीं लेते, परन्तु कर्ण-रावणादि दुष्टों का नाश कैसे होता?'' भगवान् जी कहने लगे, ''आर्य जी! प्रथम तो जो जन्म लेगा, वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा, परन्तु मैं तो यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ८ वें मन्त्र के अनुसार अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरं (शरीर रहित, जन्म-मरण से रहित, नस-नाड़ी के बन्धन में न आने वाला) हूँ। मैं जब शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कर सकता हूँ तो मेरे सामने कंस और रावण आदि एक कीट के समान भी नहीं। सर्वव्यापक होने से कंस-रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा हूँ। मैं जब चाहूँ उसी समय उनका मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता हूँ। इस अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त मुझ को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्म-मरण युक्त कहना मूर्खता का काम है और यह कहो कि भक्तों के उद्धार के लिए जन्म लेता हूँ तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन मेरी आज्ञानुसार चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य मुझमें है। जब मैं पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् के बनाने, धारण करने और प्रलय करने रूप कर्मों से पुत्रोत्पत्ति, कंस, रावणादि का वध और गोवर्धनादि उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में मेरे कर्मों का विचार करे तो मेरे सदृश न कोई हुआ और न ही होगा।''

मैंने भगवान् जी से कहा, ''वैसे तो अभी भी मेरा मन पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुआ, परन्तु बस केवल एक और प्रश्न का उत्तर दे दीजिये फिर मैं आपसे झगड़ने वाली प्रार्थना को वापिस ले लूँगा।'' भगवान् जी मेरी बातों से विस्मित हो रहे थे मेरी जिज्ञासाओं को सुनकर मेरे प्रति प्रेम की भावना प्रकट करते दिखाई दे रहे थे। मैंने कहा, ''भगवान् जी! मैंने सुना है आप दयालु भी हैं और न्यायकारी भी, ये दोनों परस्पर विरोधी शब्द हैं, यदि आप न्याय करें तो दया और दया करें तो न्याय छूट जायेगा, क्योंकि 'न्याय' उसको कहते हैं जो कर्त्ता के कर्मों के अनुसार, न अधिक न न्यून सुख-दुःख पहुँचाना और 'दया' उसको कहते हैं जो अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़

देना।''

भगवान् जी ने कहा, ''आर्य जी बहुत चतुर हो गये हो, मेरे ही बनाये नियम उलट-पुलट कर मुझे समझाने का प्रयास कर रहे हो, परन्तु यदि तुम इस का ठीक अर्थ जानना चाहते हो तो मैं फिर कहूँगा कि तुम महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास को पढ़ लो, तुम्हारे सारे भ्रमों के उत्तर मेरे विषय में शान्त हो जायेंगे, परन्तु फिर भी तुम्हें निराश नहीं करना चाहता, ध्यान से सुनो-''

''न्याय और दया में नाममात्र ही भेद है, क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दु:खों को प्राप्त न हो, वही दया कहाती है। जो पराये दु:खों का छुड़ाना और जैसा अर्थ दया का तुमने किया, वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा बुरा कर्म किया हो, उसको उतना वैसा ही दण्ड देना 'न्याय' और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाये, क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्त्रों धर्मात्मा पुरुषों को दण्ड देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्त्रों मनुष्यों को दु:ख प्राप्त होता है, वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है जो उस डाकू को कारागार में डाल पाप करने से बचाना है और उस डाकू को मार सकने से अन्य सहस्त्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।'' मैं भगवान् जी द्वारा दिये गये उत्तरों से निरुत्तर हो गया था। अब मैं आत्मग्लानि से अपना मुख भी ऊपर नहीं उठा पा रहा था, परन्तु मुझे एक बात स्मरण हो आई। मैंने भगवान् जी से कहा, ''भगवन्! आप आज मुझसे इसलिए नाराज हो रहे हैं कि मैंने आप से झगड़ा करने का मन बनाया है, परन्तु मैंने ऋग्वेद (७/४१/५) के मन्त्र में ऋषि मुनियों को भी आपसे झगड़ते देखा है। मैं तो स्वयं अपना ही उद्धार चाहता हूँ, परन्तु ये ऋषि-मुनि तो अपने को स्वयं भगवान् बनने की इच्छा आप के सामने प्रकट कर रहे हैं। मन्त्र देखिये-

''**भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्त: स्याम्**'' इस मन्त्र में ये ऋषि-मुनि आप को पिता रूप में पुकार कर '**वयं भगवन्त: स्याम्**' अर्थात् हमको भी भगवान् बना दे, कह रहे हैं। भगवान् जी! जब आप ऋषि मुनियों की बात सुनकर उनको भगवान् बना रहे हो, मैं तो केवल अपना ही उद्धार चाहता हूँ। आप मुझसे रुष्ट क्यों हो रहे हो?''

भगवान् जी ने उत्तर दिया, ''आर्य जी! आप भगवान् का अर्थ समझने में भूल कर रहे हो। 'भगवान्' का अर्थ है ऐश्वर्य वाला। वे ऋषि-मुनि ऐश्वर्यवान् होने की बात कर रहे हैं। मेरे समान भगवान् बनने की नहीं।'' मुझे अपने अल्पज्ञान का बोध हुआ। मैं और अधिक आत्मग्लानि से भर गया। मैं अपनी मूर्खता पर मुस्करा रहा था, मुझे क्षमा कर दो, मुझे क्षमा कर दो, भगवान् जी, मुझसे भूल हो गई है। मैं आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता था। मैं इस प्रकार बड़बड़ा रहा था। धर्मपत्नी ने आकर कहा, ''श्रीमान् जी! किससे क्षमा माँग रहे हो? मुस्करा भी रहे हो, क्षमा भी माँग रहे हो, उठना नहीं क्या? प्रात:काल के ५.३० बज चुके हैं, आप तो प्रात: ४ बजे उठ जाते हैं। क्या बात है स्वास्थ्य तो ठीक है न। उठिये। मैं हडबड़ा कर उठा धर्मपत्नी जी ने कहा, ''क्या कोई स्वप्न देख रहे थे?'' मैं बोला, ''हाँ, स्वप्न ही समझो। मैं भगवान् जी से लड़ने गया हुआ था।'' धर्मपत्नी बोलीं, ''क्या बात है, तुम इतने सामर्थ्यवान् हो गये हो क्या कि अब भगवान् से भी झगड़ा करने लग गये हो।'' मैंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, ''देवी जी! वैसे मेरे कर्म इतने अच्छे हैं नहीं कि परमपिता परमात्मा से साक्षात्कार हो सके। चलो इसी झगड़े के बहाने ही उनसे मुलाकात हो गई। मैं अपने स्वप्न पर मुग्ध था और विचार कर रहा था कि मुझे यदि परमपिता परमात्मा से साक्षात्कार करना है तो उसके लिए मुझे निष्काम कर्म करने होंगे। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान अर्जित करना होगा, उसे कर्म में परिवर्तित करना होगा, तभी मेरी उपासना सार्थक हो पायेगी। इसके लिए निरन्तर योगाभ्यास करना होगा। वैराग्य को जीवन में धारण करना होगा। योग के आठों अंगों को धारण करना होगा। परमपिता परमात्मा का धन्यवाद करते हुए मैंने अपना बिस्तर त्यागा और नित्यकर्म से निवृत्त होने लगा। इस प्रकार मेरा यह भगवान् जी से झगड़े करने का अध्याय सम्पन्न हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. सत्यार्थप्रकाश- महर्षि दयानन्द सरस्वती

२. ऋग्वेद भाष्य- महर्षि दयानन्द सरस्वती
प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, अजमेर

३. यजुर्वेद भाष्य- महर्षि दयानन्द सरस्वती
प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, अजमेर

४. भगवान् से झगड़ने का मजा- डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

शङ्का समाधान - ५२

डॉ. वेदपाल

शङ्का- आर्यसमाज के नियमों के अन्तर्गत जिस अविद्या का उल्लेख किया गया है, वह अविद्या क्या है? तथा यजुर्वेद में जिस अविद्या का उल्लेख है, वह क्या है?

वेदरत्न

समाधान- आपकी शङ्का के दो भाग हैं- **प्रथम**- आर्यसमाज के आठवें नियम में उल्लिखित **अविद्या**, जिसके नाश का निर्देश महर्षि ने किया है। तद्यथा- ''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।'' नियम-८

द्वितीय- यजुर्वेद अध्याय चालीस के मन्त्र संख्या १२-१४, इन मन्त्रों में पठित अविद्या ('अविद्याम्'-मन्त्र-१२,'अविद्यायाः' मन्त्र-१३,'अविद्यया' मन्त्र-१४) पद।

उपर्युक्त स्थलों पर पठित 'अविद्या' पद 'विद्या' पद से नञ् समास होकर निष्पन्न हुआ है। अतः इससे पूर्व 'विद्या' पद के अर्थ को समझना उचित रहेगा। महर्षि लिखते हैं- ''**विद्या अर्थात् यथार्थज्ञान**'' तथा ''**वेत्ति यथावत्तत्त्वं पदार्थस्वरूपं यया सा विद्या**''- जिससे पदार्थों का यथार्थस्वरूप बोध होवे वह विद्या है। -द्र. स.प्र. समु. ७

वैयाकरण नञ् के छः अर्थ मानते हैं। कारिका है-

तत्सादृश्यं तदन्यत्वं तदल्पत्वं विरोधिता।
अप्राशस्त्यमभावश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् जिससे नञ् समास हुआ है उसके सदृश जैसे विद्या से नञ् होकर 'न विद्या अविद्या'= विद्या के सदृश या समान। इसमें विद्या तो नहीं, किन्तु विद्या के सदृश-उस जैसी है, आदि-आदि। नञ् के दो भेद हैं-

द्वौ नञौ समाख्यातौ पर्युदास प्रसज्यकौ।
पर्युदासः सदृशग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत्।।

अर्थात् नञ् के दो भेद हैं- १. पर्युदास और २. प्रसज्य। इनमें पर्युदास प्रतिषेध सदृश अर्थ का ग्राहक है और प्रसज्य प्रतिषेध निषेध का। समस्त पद में पूर्व पद की प्रधानता होने पर प्रसज्य प्रतिषेध तथा उत्तर पद प्रधान होने पर पर्युदास प्रतिषेध मानकर अर्थ किया जाता है।

यदि 'अविद्या' इस समस्त पद में नञ् समास को पूर्व पद-पदार्थ (अविद्या के 'अ' जो कि 'न विद्या अविद्या' इस प्रकार विग्रह करने पर 'न'=न्+अ में से न् को लोप होकर केवल 'अ' शेष रहता है।) प्रधान मान लें, तब प्रसज्य प्रतिषेध होगा। अर्थ होगा-विद्या=ज्ञान का पूर्णतः अभाव। यदि उत्तर पद-पदार्थ (अविद्या में विद्या) प्रधान मानते हैं, तब पर्युदास प्रतिषेध होगा। अर्थात् यहाँ प्राधान्य विद्या के निषेध 'अ' (अविद्या के प्रथम पद अ) का न होकर उत्तर पद (अविद्या में उत्तर पद अ+विद्या-विद्या है।) विद्या का होगा। तब अर्थ होगा कि भले ही सर्वांश में विद्या न हो, किन्तु विद्या के एक अंश का अभाव होने पर भी किसी अन्य अंश में विद्या के सदृश है। अर्थात् अर्थ विद्या के सदृश अथवा तदन्यत्व विषयक होगा।

आर्यसमाज के नियम आठ में पठित 'अविद्या' पद **विरोधिता=विद्या के विरोधी** अर्थ का वाचक है। अर्थात् जो विद्या के विपरीत ज्ञानान्तर है- वह अविद्या है, वही नष्ट करने योग्य है। अविद्या विषयक योगदर्शन का मत है-

'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या'

-यो. द. २.५

अर्थात् अनित्य वस्तु/पदार्थ-पृथिवी आदि को नित्य जानना विषयक जो विरोधी ज्ञान है, वह अविद्या है। इसी प्रकार अशुचि शरीर आदि भले ही किसी का भी क्यों न हो, उसे शुचि जानना अविद्या है। इस प्रकार (अशुचि शरीर को शुचि मानना आदि) का वर्णन प्रायः काव्य, नाटकादि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, वहाँ नायक, नायिका के शरीर से दुर्गन्ध के स्थान पर सुगन्ध निःसृत होने का वर्णन कवि करता है। जैसे- 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य में कालिदास द्वारा पार्वती के- ''**मुखेन सा पद्मसुगन्धिना सा प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।**'' मुख का पद्म/कमल की सुगन्धि से सुगन्धित होना। इसी प्रकार पुराण में ऋषभदेव के मलत्याग करने पर वनान्तर का सुगन्धित हो जाना आदि। दुःख एवं दुःख के जनक विषयों अथवा पदार्थों को सुख एवं सुख के जनक तथा अनात्म पदार्थों को आत्म मानना विपरीत ज्ञान होने से अविद्या है। भाष्यकार व्यास

का कथन है- **''...एवम् अविद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभावः किन्तु विद्याविपरीतं ज्ञानान्तरम् अविद्येति।''** यह विद्या का विरोधी ज्ञान है।

इस प्रकार आर्यसमाज के नियम आठ में पठित अविद्या पद विद्या-यथार्थ ज्ञान के विरोधी जिसे अज्ञान अथवा ज्ञानान्तर कह सकते हैं, का वाचक है।

यजुर्वेद चालीसवें अध्याय के १२-१४ मन्त्रों में विद्या एवं अविद्या दोनों पद साथ-साथ पढ़े गए हैं। मन्त्र संख्या १२ एवं १४ को समझने के लिए मध्यवर्ती मन्त्र १३ को पहले समझना उचित रहेगा। एतदनुसार विद्या एवं अविद्या दोनों का कार्य अथवा फल भिन्न-भिन्न है। यह वैभिन्न्य मन्त्र संख्या बारह तदनु चौदह से स्पष्ट है।

मन्त्र संख्या बारह में अविद्या की उपासना से गहन अन्धकार तथा विद्या की उपासना से गहनतम अन्धकार में प्रवेश की बात कही गई है। इस मन्त्र में विद्या-अविद्या दोनों निश्चय ही परस्पर विरोधी नहीं हैं, अपितु परिणाम/फल में दोनों में अन्तर होते हुए भी इनमें सादृश्य है, क्योंकि एक अविद्या के फल-गहन अन्धकार-**'अन्धन्तमः'** से दूसरे विद्या का फल अधिक-**'ततो भूय इव ते तमः'** होते हुए भी है तो अन्धकार ही।

इसी प्रकार मन्त्र संख्या चौदह में विद्या और अविद्या दोनों का परिज्ञान एक साथ करने का स्पष्ट सन्देश है। दोनों के ज्ञान से ही व्यक्ति जन्म-मरण के दुःख से छूटकर अमृतत्व का भोग करने में समर्थ होता है। जब तक इस जगत् का यथार्थ ज्ञान नहीं है, तब तक इस जगत् के बन्धन से छूटना सम्भव नहीं है। इसलिए जगत् विषयक ज्ञान= अविद्या से ही जागतिक बन्धन जन्म-मरण से छूटकर ईश्वर विषयक ज्ञान= विद्या से अमृतत्व/ईश्वर प्राप्ति का अवकाश है।

उपनिषद् के ऋषि ने इसी विद्या एवं अविद्या को **परा** एवं **अपरा** नाम से कहा है। तद्यथा-

'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।' -मुण्डक १.४-५

इस प्रकार यजुर्वेद में अविद्या पद विद्या= ज्ञान के विरोधी अज्ञान का बोधक न होकर पर्युदास प्रतिषेध के आधार पर तत्सादृश्य एवं तदन्यत्व का वाचक होकर जड़ जगत् विषयक ज्ञान (भौतिक पदार्थों का ज्ञान) का बोधक है। कार्यकारणात्मक जगत् का ज्ञान जागतिक बन्धन से छूटने के लिए तथा उसका समुचित उपयोग करने के लिए अपेक्षित तो है, किन्तु मात्र उतने से ही सन्तुष्ट हो जाना प्रकृति से ऊपर उठने में बाधक है। इसलिए उसे अविद्या पद से अभिहित किया है। जगत् ज्ञान के साथ आत्म-परमात्म विषयक ज्ञान ईश प्राप्ति-मुक्ति का सहायक है। अतः उसे विद्या कहा है। वेद में दोनों ही ज्ञान की उपयोगिता प्रकट की गई है। जगत् में लीन रहना जहाँ अन्धन्तमः में प्रवेश पुनः-पुनः जन्म-मरण का हेतु है, वहीं जगत् को मिथ्या मानकर उसकी उपेक्षा करते हुए केवल ईश-पराविद्या में रत रहना **'ततो भूय इव ते तमः'** गहनतम अन्धकार का प्रापक है।

उक्त यजुर्वेदीय मन्त्रों की ईशोपनिषद् में व्याख्या करते हुए आचार्य शङ्कर विद्या से देवता ज्ञान तथा अविद्या से कर्म ग्रहण करते हैं। यजुर्वेद के भाष्यकार उवट एवं महीधर विद्या से आत्मज्ञान तथा अविद्या से कर्मकाण्ड-स्वर्गाद्यर्थक अग्निहोत्र आदि कर्म ग्रहण करते हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में-

''यद्यच्चेतनं ज्ञानादिगुणयुक्तं वस्तु तज्ज्ञातृ यदविद्यारूपं तज्ज्ञेयं यच्च चेतनं ब्रह्मविदात्मस्वरूपं वा तदुपासनीयं सेवनीयं च यदतो भिन्नं तन्नोपासनीयं किन्तूपकर्त्तव्यम्''-मन्त्र १२ तथा मन्त्र चौदह में- **''अविद्यया-शरीरादिजड़ेन पदार्थसमूहेन कृतेन पुरुषार्थेन मृत्युम्-मरणदुःखभयम् तीर्त्वा-उल्लंघ्य विद्यया-आत्मशुद्धान्तः करण-संयोग धर्मजनितेन यथार्थदर्शनेन अमृतम्-नाशरहितं स्वस्वरूपं परमात्मानं वा अश्नुते।''** यहाँ अविद्या का अर्थ शरीरादिजड़पदार्थसमूह से किया जाने वाला पुरुषार्थ अर्थात् जागतिक पदार्थों का ज्ञान तथा इन शरीर आदि द्वारा ज्ञानपूर्वक किए जाने वाले कर्म हैं।

इस प्रकार आर्यसमाज के नियम में अविद्या पद अज्ञान तथा वेद में ज्ञान के दूसरे पक्ष जागतिक पदार्थों के ज्ञान तथा ज्ञानपूर्वक किए कर्म का वाचक है।

क्या चाहिए? सुख या सुविधाएँ??

रामनिवास 'गुणग्राहक'

मैं जानता हूँ कि यह शीर्षक थोड़ा अटपटा और चटपटा सा है। निश्चित रूप से इसे जो भी सामान्य बुद्धि से पढ़ेंगे और समझने का प्रयास करेंगे, उनके लिए यह उलझन भरा शीर्षक हैं। पहली उलझन तो यह होगी कि क्या सुख और सुविधाएँ एक-दूसरे के सहायक हैं या एक-दूसरे के बाधक? क्या सुविधाओं में सुख नहीं है? क्या सुख पाने के लिए सुविधाएँ छोड़नी पड़ेंगी? क्या सुविधाओं के लिए की जाने वाली भागदौड़ हमें सुख से दूर ले जा रही है? सामान्य बुद्धि वालों के लिए इन प्रश्नों के सटीक उत्तर ढूँढना बहुत ही कठिन है। आज कौन यह मानने को तैयार होगा कि भौतिक सुविधाएँ हमारे तन को दुर्बल और दूषित कर रही हैं, हमारे मन को उद्दण्ड बना रही है तथा हमारे मस्तिष्क को भ्रमित करके सत्य से भटका रही हैं। सुविधाओं में सुख ढूँढने वाले कभी धनी और सुविधा-सम्पन्न परिवारों में जाकर देखें कि वे आन्तरिक दृष्टि से कितने खोखले हैं, तनाव- ग्रस्त हैं, व्याकुल और अशान्त हैं-असन्तुष्ट हैं। अपने चारों ओर देश और दुनिया की सब प्रकार की सर्वोत्तम सुविधाओं को पाकर, आगे-पीछे चाटुकारों-सेवकों की टोलियों को देखकर गर्वोन्मत्त लोगों का जीवन इस तड़क-भड़क में न जाने कहाँ दबकर मर चुका है। आनन्द और उल्लास से शून्य, विश्वास और अपनेपन से रहित, मानवीय संवेदनाओं से अपरिचित, दया-करुणा और उदारता जैसे सद्गुणों से मुँह छिपाकर जीने वाले लोगों के जीवन में सच्चा सुख भला आये भी तो किस रास्ते से? और टिके भी तो कहाँ??

सुख और शान्ति का समन्वय- सुख की परिभाषा करने लगें तो 'सु' अर्थात् अच्छा और 'ख' इन्द्रियों को कहते हैं। इस प्रकार हमारी आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों को जो अच्छा लगे, वह सुख कहलाता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि बाहर की जो वस्तुएँ सामान्यत: हमें खाने-पीने, देखने-सूंघने और छूने-सुनने में अच्छी लगती हैं, वे सदा सुख ही देंगी यह सच नहीं है। अगर हमारी आन्तरिक स्थिति ठीक नहीं है तो बाहरी सुखद वस्तुएँ सुखद नहीं रहतीं। एक मनुष्य किसी परिचित के विवाह में गया, वहाँ जाकर वह नाचने-गाने में और विविध स्वादिष्ट पकवान मिष्टान्न खाने-पीने में मस्त है। मित्रों के साथ सब काम खूब रस लेकर कर रहा है कि अचानक उसे घर से सूचना मिलती है कि उसके किसी प्रियजन के साथ कोई गम्भीर दुर्घटना हो गई, कोई व्यापारिक घाटा हो गया या वहीं किसी मित्र के साथ विवाद-झगड़ा हो गया। क्या ऐसी स्थिति में वह नाचने-गाने या खाने-पीने में सुख प्राप्त कर सकता है? बाहरी सब चीजें वही हैं, अन्य लोग उन चीजों से पहले जैसा ही सुख अनुभव कर रहे हैं। इसको क्या हो गया? इसे वहाँ कुछ भी अच्छा क्यों नहीं लग रहा? पता लगा कि इसकी आन्तरिक स्थिति बिगड़ गई, इसके विचारों और भावनाओं में उथल-पुथल चल रही है। यह अन्दर से अशान्त हो उठा है और अन्दर की अशान्ति के चलते बाहर की सब चीजें इसके लिए नीरस होकर रह गई हैं। इसके लिए अब उनमें वह सुख नहीं रहा। पता चला कि बाहरी सुख-सुविधाओं से कहीं अधिक मूल्यवान् अन्दर की शान्ति है। अन्दर की अशान्ति के चलते बाहर की सुखद और सुविधाजनक चीजें व्यर्थ हो जाती हैं। दूसरी ओर देखा यह जाता है कि जिनकी आन्तरिक स्थिति ठीक हो, मन-मस्तिष्क में शान्ति और प्रसन्नता हो तो बाहरी वस्तुओं व सुविधाओं के बिना भी वे सुखी व प्रसन्नचित दिखते हैं। सुविधाएँ सुख देने वाली हो सकती हैं, यदि वे आन्तरिक शान्ति को चोट पहुँचाकर अर्जित न की गई हों। आज भौतिक सुविधाओं के पीछे पागल होकर भागने वाले मानव ने अपनी आन्तरिक शान्ति की ओर ध्यान देना बन्द कर दिया है। अन्दर से आकुल-व्याकुल, तनावग्रस्त और अशान्ति का ग्रास बना हुआ मानव भौतिक सुविधाओं से उपजी चमक-दमक के सहारे जीवन को सुखी और सफल मानने की भयंकर भूल कर रहा है। उसे समझना होगा कि शान्ति सुख से कहीं अधिक मूल्यवान् है। संसार में किसी भी प्रकार का अनुचित कार्य-व्यवहार हमारी आन्तरिक शान्ति को चोट पहुँचाता है। हमारी आन्तरिक शान्ति चोटिल

हो तो सांसारिक सुख-सुविधाएँ दु:ख-दुविधाएँ बनकर रह जाती हैं। शान्ति और सुख का समन्वय ही हमारे जीवन को सही दिशा प्रदान करता है और हम आनन्दधाम परमात्मा के प्रिय पुत्र बनकर प्रभु की कृपा के पात्र बन जाते हैं।

सोच बदलें, सब बदल जाएगा- कोई व्यक्ति क्या कर रहा है, कहाँ जा रहा है, उन्नति को प्राप्त हो रहा है या अवनति को-यह सब उसकी सोच पर निर्भर करता है। संसार का हर मनुष्य चाहे सुझाव या राय जिस किसी से भी ले, मगर निर्णय सदैव अपनी सोच के अनुसार ही करता है। संसार में सबसे कठिन काम है अपनी सोच का बदलना, क्योंकि हमारी सोच के पीछे हमारी पूर्व निर्धारित कई मान्यताएँ और धारणाएँ काम कर रही होती हैं। बहुत कम लोग होते हैं जो मन-मस्तिष्क में जड़ें जमा चुकीं उन मान्यताओं-अवधारणाओं का अतिक्रमण करके देश, काल और परिस्थिति के अनुसार नई मान्यताएँ-अवधारणाएँ स्वीकार कर पाते हैं। दूसरों के दोष-दर्शन और दूसरों के मार्गदर्शन में निपुण दिखने वाले लोग अपने स्वभाव, विचार और व्यवहार के दोषों को जाँचने-परखने तक को तैयार नहीं होते। **'स्व अज्ञान ज्ञानिनो विरला:'** के अनुसार अपने अज्ञान, अपनी कमियों को जानने, समझने और सुधारने वाले बहुत कम होते हैं। मगर ध्यान देने वाली बात यह है कि संसार की सारी शिक्षाएँ, सारे उपदेश, सारे ग्रन्थ केवल उन्हीं लोगों के लिए हैं, जो स्वयं को सुधारने का साहस रखते हैं। सुख-शान्ति चाहने वाले हर मनुष्य को आवश्यक है कि वह अपने दोष दूर करने के लिए नि:संकोच प्रयास करे। सारा संसार सुधर जाए तो मुझे कुछ नहीं मिलना, सारा संसार बिगड़ जाए मैं ठीक रहूँ तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ना। मुझे किसी दूसरे का किया कभी नहीं मिलना, मुझे मेरे कर्मों का ही फल मिलना है। सुविधाओं के पीछे भागते संसार की दुर्दशा देखकर हमें हमारी पूर्व निर्धारित मान्यताओं में संशोधन कर लेना चाहिए। हमारे तत्त्वदर्शी ऋषि हजारों-लाखों वर्ष पूर्व लिख गए हैं-**'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:'** अर्थात् धन से हमारी तृप्ति कभी नहीं हो सकती, फिर धन के पीछे अन्धी दौड़ क्यों? हमने जो धन में, भौतिक सुविधाओं में ही सब कुछ मान रखा है, यह भूल है। धन कमाना बुरा नहीं मगर धन को जीवन का लक्ष्य बना लेना बुराई है। कौन कह सकेगा कि सब धनी और सुविधासम्पन्न व्यक्ति सुखी हैं तथा धन न होने से सब दु:खी हो जाते हैं। यह सोच जब बदल जाएगी, इस सोच के पीछे की मान्यताएँ बदल जाएंगी तो हमारे जीवन में एक सच्चा-सुखद बदलाव आएगा। आइए इसकी तैयारी करें। -**आर्यसमाज, श्रीगंगानगर।**

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ९८७९५८७७५६

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

२५ जुलाई पुण्यतिथि.....

बहारें फिर नहीं लौटी।
(मास्टर आत्माराम अमृतसरी)

सोमेश 'पाठक'

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब हम आर्यसमाज के उन प्रारम्भिक व्यक्तियों की तरफ नजर डालते हैं जिनके तप और पुरुषार्थ के कारण आर्यसमाज उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा था तो मारे गर्व के छाती चौड़ी हो जाती है और भला क्यूँ न हो? क्या आर्यसमाज से भी सौभाग्यशाली संस्था धरती पर कोई दूसरी हुयी? जिसके अनुयायियों का डंका कभी सारे भूमण्डल में बजता था। कोई कुछ भी कहे पर हम तो इसे ऋषि का जादू कहेंगे। वो जादू जो सर चढ़कर बोलता था। ऋषि के जीवन ने अगर समाज में व्याप्त तमस् को ललकारा था तो ऋषि की मृत्यु ने समाज की आत्मा को ही झकझोर दिया था। ऋषि के जीवन ने अगर महात्मा मुंशीराम और पं. लेखराम पैदा किये तो ऋषि की मृत्यु ने पं. गुरुदत्त को जन्म दिया। ऋषि की सफलता को दिखाने के लिये इनमें से कोई एक नाम ही ले लेना पर्याप्त है। पर यहाँ तो ऋषि के मिशन पर खुद को होम कर देने के लिये न जाने कितने सूरमा खड़े हो गये थे। उन्हीं सूरमाओं में एक नाम मास्टर आत्माराम अमृतसरी भी है।

मास्टर आत्माराम जी का जन्म आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को संवत् १९२४ वि. (तदनुसार १ जून १८६७ ई.) में अमृतसर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री राधाकृष्ण जी माहेश्वरी था। जिन्हें कि 'दानी तहसीलदार' के नाम से भी जाना जाता था। आप नित्य प्रति दो-तीन सौ भिखारियों को आटा व चने दान किया करते थे। आप बड़े ही विद्वान् और कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। मास्टर जी की माता श्रीमती माया देवी जी भी बड़ी ही ब्राह्मण-भक्त और दानी स्वभाव की महिला थीं। छोटी आयु (५ वर्ष) में ही मास्टर जी के सर पर से पिता का साया हट गया था, इसलिये मास्टर जी के लालन-पालन का बोझ इस देवी ने अकेले ही उठाया।

मास्टर जी प्रारम्भ से ही बड़े ही कुशाग्र बुद्धि थे। ८ वर्ष की आयु में आप सरकारी उर्दू स्कूल में भर्ती हुये और ४ वर्ष की पढ़ाई केवल २ वर्ष में पूरी की, फिर हाई स्कूल में भर्ती हुये। आपकी योग्यता को देखकर सभी आपकी तरफ आकृष्ट हुआ करते थे। उन दिनों मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखन ने सारे पंजाब में तहलका मचा रखा था। आप भी उन भाग्यशाली व्यक्तियों में थे जो मुंशी जी को पढ़कर आर्यसमाजी बने। श्री मुरलीधर जी की प्रेरणा से आप आर्यसमाज अमृतसर के सभासद् बने तथा कुछ समय बाद पं. लेखराम जी ने आपकी वाक्शक्ति को देखकर 'आर्य वाक्वर्धनी सभा अमृतसर' का मन्त्री बना दिया। कुछ ही समय बाद आपका पं. गुरुदत्त जी से मिलना हुआ। जिसके बाद आपने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज व देशोन्नति में लगाना उचित समझा। पं. गुरुदत्त जी ने भी आपके व्याख्यानों को सुना था। पं. गुरुदत्त जी दस लोगों की एक टीम धर्मप्रचार के लिये अमेरिका भेजना चाहते थे। जिसमें उन्होंने आपका नाम भी सम्मिलित कर रखा था। इन दस लोगों में कुछ नाम ज्ञात हैं जो कि हम लिखे देते हैं। मुनिवर पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा दुर्गाप्रसाद जी, मास्टर आत्माराम जी, पं. जयचन्द जी, डॉ. शालिग्राम जी, डॉ. चिरंजीव जी तथा इनके अतिरिक्त चार अन्य महानुभाव भी थे। दुर्भाग्य ही है कि पण्डित जी की असमय मृत्यु के कारण उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी।

मास्टर आत्माराम जी उन प्रतिभाशाली लोगों में से थे जो चाहते तो अपना जीवन सरकार के किन्हीं बड़े पदों पर रहकर सुख-सुविधाओं में व्यतीत कर सकते थे, पर उन्होंने तहसीलदार जैसे पदों को ठोकर मारकर आर्यसमाज के प्रचार का कार्य अपनाया था, क्योंकि वे जानते थे कि केवल ऋषि के विचार में ही इतनी ताकत है कि वह भारतवर्ष का बेड़ा पार कर सकता है। इसलिये वे बिना इस बात की परवाह किये कि उनके परिवार का क्या होगा, आर्यसमाज के उत्थान में तन-मन व धन से लग गये। और फिर क्या हुआ? ये घटनायें इतिहास के पन्नों में

करवटें ले रही हैं। हम चाहें भी तो इस संक्षिप्त लेख में उन घटनाओं का केवल नामोल्लेख तक नहीं कर पायेंगे क्योंकि ऐसा करने के लिये हमें ऐसे कई लेख भी कम जान पड़ते हैं। अत: हमने यह सार्थक लेकिन व्यर्थ कोशिश भी नहीं की है।

मास्टर जी का कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से पंजाब तथा गुजरात रहा। प्रारम्भ में वे पंजाब में कार्य करते रहे तथा सन् १९०८ ई. में वे बड़ौदा नरेश के बुलावे पर बड़ौदा गये तथा अपनी आयु का एक बड़ा भाग यहीं कार्य करते हुये बिताया। मास्टर जी ने अछूतोद्धार के लिये जो कार्य किया है वह अवर्णनीय है और उन्हें इस कार्य में कितने संकट झेलने पड़े यह लेखनी कभी बता न सकेगी।

मास्टर जी का नाम आर्यसमाज के दिग्गज शास्त्रार्थ महारथियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये। आपकी ऊहा और तर्क-शक्ति के सामने विरोधी का टिक पाना मुश्किल हुआ करता था। अपने शास्त्रार्थों और शङ्का-समाधानों से आपने अनेक लोगों को सच्ची धार्मिकता सिखलाई।

मास्टर जी ने लेखन कार्य भी बहुत बड़े स्तर पर किया। संस्कार चन्द्रिका, आदर्श गृहस्थ जीवन, सृष्टि विज्ञान, शरीर विज्ञान, तुलनात्मक धर्म विचार, बल प्राप्ति जैसी अद्‌भुत पुस्तकें आपके द्वारा रची गयीं। उस समय की शायद ही आर्यसमाज की कोई पत्र-पत्रिका होगी जिसमें आपके लेख न छपे मिलते हों। पं. लेखराम जी की शहादत के बाद ऋषि जीवन को सम्पादित करने का कार्य पंजाब प्रतिनिधि सभा ने आपको सौंपा। क्योंकि योग्यता और कद की दृष्टि से कोई दूसरा ऐसा था ही नहीं जो पण्डित लेखराम जी के उस अधूरे कार्य को पूरा कर सकता हो, ऐसा मैंने नहीं स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कहा है। पं. लेखराम कृत ऋषि जीवन के कई अध्याय मास्टर आत्माराम जी की लेखनी से निकले हुये हैं।

आपकी योग्यता और वाक्‌शक्ति को देखकर श्रीमद् जगद्‌गुरु शारदापीठाधीश शंकराचार्य पण्डितप्रवर श्री भारतीकृष्ण तीर्थ जी तथा उनकी पण्डित मण्डली ने आपको 'व्याख्यान वाचस्पति' जैसी उपाधि से सम्मानित किया था।

मास्टर जी ने अपने जीवनकाल में अनेक संस्थाओं की स्थापना की तथा कुशलता से संचालन भी किया। जिनमें आर्य कन्या महाविद्यालय सोनगढ़, आर्य कुमार आश्रम बड़ौदा, आश्रम अमृतपुरा, आर्य कुमार प्रेस, अछूत पाठशालायें, व्यायाम- शालायें, अबला आश्रम इत्यादि प्रमुख हैं।

मास्टर जी के परिवार में कुल ९ लोग थे। वह और उनकी पत्नी श्रीमती यशोदा देवी तथा पाँच पुत्र और दो पुत्रियाँ। जिनके नाम क्रमश: श्री शान्तिप्रिय जी, श्री आनन्दप्रिय जी, श्री प्रतापचन्द्र जी, श्री महेन्द्रचन्द्र जी बी.ए., श्री जयदेव जी तथा पुत्रियों के श्रीमती सुखदा देवी जी तथा श्रीमती सुशीला देवी जी हैं।

मास्टर जी का जीवन जितना प्रेरणादायक है उनकी मौत भी उतनी ही प्रेरणादायक है। मृत्यु से कुछ मास पूर्व ही शारीरिक कमजोरी के कारण उन्हें यह आभास हो गया था कि अब अधिक जीवन शेष नहीं है। १ जून सन् १९६८ को उनका जन्मदिवस यज्ञादि शुभकर्मों को करते हुये मनाया गया, जिसमें उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की कि वे असहाय होकर नहीं मरना चाहते और हुआ भी ऐसा ही। उन्होंने अन्तिम समय तक किसी से भी अपनी सेवा न कराई। २५ जुलाई सन् १९६८ को प्रात: काल उनका देहान्त हो गया। सम्पूर्ण जीवन समाज के हित में लगाकर यह पवित्र आत्मा संसार से कूच कर गयी।

आर्यजगत् के मूर्धन्य इतिहासज्ञ आदरणीय श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी ने मास्टर आत्माराम अमृतसरी की जीवनी को लिख दिया है। अभी प्रेस में है कुछ ही दिनों में पाठकों के हाथों में होगी।

---

xãÚ1ßÊebaüãÊ{Úe

योग-साधना एवं स्वाध्याय शिविर की तिथियों में परिवर्तन किया गया है। अब यह शिविर १५ से २२ सितम्बर २०१९ को आयोजित होगा।

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना एवं स्वाध्याय शिविर

परिवर्तित दिनांक : १५ से २२ सितम्बर २०१९

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों–बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।
२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।
३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।
४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।
५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।
६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।
७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा– खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।
८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।
९. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।
१०. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ– परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५–२४६०१६४) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने–ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं

शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। पृथक् कक्ष का शुल्क १००० रु. अतिरिक्त देय है। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (०१४५-२६२१२७०) में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

email:psabhaa@gmail.com

संयोजक

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

परोपकारिणी सभा में आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता

सभा द्वारा संचालित आयुर्वेदिक चिकित्सालय के लिये योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता है। चिकित्सालय में सेवा देने का समय प्रतिदिन २ घण्टे है। आवास, भोजन आदि की व्यवस्था सभी की ओर से ही होगी।

सम्पर्क- ०१४५-२६२१२७०, ९४६०४२११८३

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३६ वाँ ऋषि बलिदान समारोह
दिनांक १, २, ३ नवम्बर २०१९, शुक्र, शनि, रविवार

विराट् व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३६वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ- 'यजुर्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन ३ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. विनय विद्यालंकार-प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड होंगे।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **वेद वर्णित ईश्वर-स्वरूप एवं नाम (ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव)।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १० अक्टूबर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १, २, ३ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। २ नवम्बर को परीक्षा एवं ३ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १० अक्टूबर, २०१९ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तदनुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १३६वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकर्त्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान् एवं विशिष्ट अतिथि- स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती-मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र., प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर, श्री सुरेश अग्रवाल-प्रधान सार्वदेशिक सभा, प्रो. सुरेन्द्र कुमार-पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, श्री तपेन्द्र वेदालंकार-(रि. आई.ए.एस.) जयपुर, आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि-झज्जर, श्री दीनदयाल गुप्त-कोलकाता, श्री शत्रुघ्न आर्य-राँची, श्री सत्यानन्द आर्य-दिल्ली, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, डॉ. ब्रह्ममुनि-महाराष्ट्र, श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, श्री प्रियव्रतदास एवं श्रीमती शन्नो देवी-भुवनेश्वर, आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सज्जनसिंह कोठारी- जयपुर, श्री विजयसिंह भाटी-जोधपुर, श्री इन्द्रजित् देव-यमुनानगर, आचार्य विद्यादेव, आचार्य घनश्यामसिंह, डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री- रायबरेली, डॉ. रघुवीर वेदालंकार-दिल्ली, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, आचार्या सूर्या देवी-शिवगंज, आचार्या धारणा 'याज्ञिकी', डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'-दिल्ली, आचार्य ओम्प्रकाश-आबूपर्वत, मा. रामपाल आर्य-प्रधान आ.प्र.स. हरियाणा, डॉ. महावीर मीमांसक-दिल्ली, श्री विजय शर्मा- भीलवाड़ा, डॉ. जगदेव-रोहतक, पं. रामनिवास गुणग्राहक-श्रीगंगानगर, डॉ. कृष्णपाल सिंह-जयपुर, डॉ. मुमुक्षु आर्य-नोएडा, पं. सत्यपाल पथिक, पं. भूपेन्द्र सिंह आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

डॉ. वेदपाल
प्रधान

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१९

विषय– वेद वर्णित ईश्वर–स्वरूप एवं नाम (ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव)

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत ३१ वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्यः वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**
३१. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द	**१६,१७,१८ नवम्बर., २०१८**